वैदिक धर्म



भाद्रपद सं. २००३
सितंबर १९४६

संपादक
पं० श्री० दा० सातवळेकर

वार्षिक मूल्य
म. ऑ. से ५) रु.। वी. पी. से ५।=) रु.
विदेशके लिये १५ शिलिंग।
इस अंकका मू. ॥) रु.

क्रमांक ३२१

वैदिक धर्म

विषयानुक्रमणिका

वैदिकधर्म

क्रमांक ३२१

वर्ष २७ | भाद्रपद विक्रमीय संवत् २००३; सितम्बर १९४६ | अङ्क ९

सबका संरक्षक परमात्मा.

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥ १२ ॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥ १३ ॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥ १४ ॥

(ऋग्वेद १।५२)

हे प्रभो ! स्वयं अपनेही बलसे तूने हमारी सुरक्षाके लिये, इस व्यापक आकाशके परे, तथा इस भूमिपर भी, अपने अप्रतिम सामर्थ्यका प्रमाण दिखाया है । तू सर्वत्र व्यापक होकर जल, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें भी फैला है । तू पृथ्वीकी प्रतिमा होकर वीरोंसे युक्त इस बडे लोकका भी एकमात्र अधिपति हुआ है, तूने अपनी महिमासे इस संपूर्ण अन्तरिक्षको भी व्यापा है, अतः यही सच है कि तेरे समान कहीं दूसरा कोई भी सामर्थ्यवान् नहीं है । द्यौ और पृथ्वी जिसके विस्तारको नहीं घेर सकती, अन्तरिक्षके जल, समुद्र या नदियां भी जिसके अन्तको नहीं पा सकतीं, वृष्टिजलके प्रवाहोंको रोकनेवाले (असुर) भी जिसके साथ युद्ध करनेका सामर्थ्य नहीं रखते, वह एकही प्रभु संपूर्ण विश्वका निर्माण करता है ॥

अतः वही एकमात्र प्रभु सबका उपास्य है । सब लोग मिलकर उसीकी स्तुति प्रार्थना उपासना, तथा सेवा करें ॥

वेद-सूक्तावलि

(१)

सख्ये ते इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥
(ऋ. १।११।२; साम. ८१८)

हे बलके स्वामिन् ! तेरी मित्रतामें बल व ज्ञानसे युक्त हुए हम भयभीत न हों। सदा जीतनेवाले, कभी न पराजित होनेवाले तुझे हम बारबार प्रणाम करते हैं ॥

तव मित्रतामें हे प्रभो,
हम भयरहित हों सर्वदा
हे बलपते, पा शक्ति तेरी,
कर्तव्यरत हम हों सदा ॥ १ ॥

हे शक्तिमन, तव शक्तिसे,
पापपर नित विजय हो।
दृढता बढे, स्थिरता बढे,
श्रद्धासहित हम अजय हों ॥ २ ॥

किसीसे दबने न वाले,
अजेय सर्वाधार हो।
जीतनेवाले सदासे,
विजयके आधार हो ॥ ३ ॥

बलपते ! शक्तिमते !
तुम प्रेमके आगार हो।
प्रेमही है अस्त्र तेरा,
दयाके भंडार हो ॥ ४ ॥

ज्ञान दो ऐसा कि जानें,
सभी मानव भावको।
ध्यान दो ऐसा कि
पहचानें सभीके चावको ॥ ५ ॥

निष्कपट हो भाव सबमें,
सफल हों कर्तव्यमें।
सब कर्म तव अर्पित करें
निश्चय बढे भवितव्यमें ॥ ६ ॥

स्तवन तव करते रहें,
हों प्रेम पूरण मन सुमन।
अर्पित करें श्रद्धांजलि,
जगमें रहें प्रसन्न मन ॥ ७ ॥

(२)

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि,
तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ (वा. य. १।५)

हे सर्व-नियन्ता, परमेश्वर, हे सब व्रतोंके स्वामी ! मैं व्रतका आचरण करूंगा। उसको पालन करनेके समर्थ होऊं। मेरा यह सब व्रताचरण पूर्ण हो, सफल हो। मैं यह व्रत धारण करता हूं, कि "मैं अनृतसे दूर रहकर सत्यको प्राप्त होऊं ॥ "

व्रतपते ! मैं आचरण व्रतका अभीसे करूंगा।
सामर्थ्य दो, हे शक्तिमान्, पूरण इसे मैं करूंगा।
प्रकाशमय, हे ज्योतिमय, आनन्दमय, परमात्मन्।
दृढ रहूं मैं, सफल हूं, व्रतमें रहूं मैं मुदितमन ॥
तेरी शरणमें नम्र हो, मैं एकमत हूं के रहा,
असत्से हो अलग, अब मैं सत्यमें मन दे रहा ॥
असत्से हट कर परे, मैं सत्य पाऊं सर्वदा।
सत्य पाकर नित्य तेरे, निकट आऊं सर्वदा ॥
हे सत्य, जगदाधार, तुमही नित्य, सर्वाधार हो।
सत्यमें हो रमण मेरा, सत्यही आधार हो ॥

—लालचन्द

ॐ

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(७)

नोधा ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदमें एकादशवाँ अनुवाक)

लेखक

भट्टाचार्य पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष स्वाध्याय-मण्डल, औन्ध, [जि० सातारा]

संवत् २००१

मूल्य १) रु०

मुद्रक तथा प्रकाशक- **वसंत श्रीपाद सातवळेकर**, B. A.
भारत-मुद्रणालय, औंध (जि. सातारा)

नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान

गोतम ऋषिका पुत्र नोधा नामक ऋषि है। इसका दर्शन ऋग्वेदके ग्यारहवे अनुवाकमें है। इसके साथ आठवे मण्डलमें ८८ वाँ सूक्त और नवम मण्डलमें ९३ वाँ सूक्त इसीके दर्शन में शामील हैं। इसके दर्शनकी सूक्तवार गणना ऐसी है—

सूक्तानुसार मन्त्र-गणना

ऋग्वेदमें प्रथम मण्डल

एकादश अनुवाक

नोधा गौतम ऋषि

सूक्त	देवता	मंत्र-संख्या
५८	अग्निः	९
५९	,, वैश्वानरः	७
६०	,,	५
६१	इन्द्रः	१६ (अथर्ववेद २०।३५।१-१६)
६२	,,	१३
६३	,,	९
६४	मरुतः	१५
		अष्टम मण्डल प्रथम दो मन्त्र
८८	इन्द्र	६ (अथर्व. २०।९।१-२; ,, २०।४९।४-५)
		नवम मण्डल
९३	पवमानः सोम.	५
	कुलमंत्र-संख्या	८५

देवतावार मन्त्र-संख्या

१ इन्द्रः	४४
२ अग्निः	२१
३ मरुतः	१५
४ सोमः	५
कुलमंत्र-संख्या	८५

अग्निके मंत्रोंमें ५९ वे सूक्तके मंत्र 'वैश्वानर अग्नि' के हैं। इस नोधा ऋषिके मंत्र अथर्ववेदमें हैं पर ऋग्वेदकेही मंत्र वैसेके वैसे अथर्ववेदमें हैं–

ऋग्वेद	देवता	अथर्ववेद
१।६१।१-१६	इन्द्रः	२०।३५।१-१६
८।८८।१-२		२०।९।१ २
		२०।४९।४-५

अर्थात् ऋ. ८।८८ सूक्तके प्रथम दो मंत्र अथर्ववेदमें दो वार आये हैं। अथर्ववेदके नोधाके मंत्र ऋग्वेदकेही हैं इसलिये उनका पृथक् विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अथर्व. २०।३५) का ऋषि ऋग्वेदमें नोधा गौतम है, अथर्व-बृहत्सर्वानुक्रमणीमें इसका ऋषि नोधा लिखा है, पर विकल्पसे भरद्वाज भी कहा है यह नितान्त अशुद्ध है। अथर्व-सर्वानुक्रमणीमें इस तरहकी भूलें बहुत हैं। इसलिये यह सूक्त भरद्वाजका नहीं है, नोधाका ही है।

अथर्ववेदमें नोधा ऋषिका उल्लेख निम्नलिखित मन्त्रोंमें है—

तं श्यैतं च नौधसं च सप्तर्षयश्च ॥२६॥
श्यैताय च वै स नौधसाय च सप्तर्षिभ्यश्च॥२७॥
श्यैतस्य च वै स नौधसस्य च सप्तर्षीणां च॥२८

(अथर्व. १५।२।२६-२८)

'नोधस्' का यह उल्लेख स्पष्ट है, ऐतरेय ब्राह्मणमें इसका नाम दो तीन वार आया है–

बृहता सामेमां नौधसेनैवेयममूं जिन्वति।

(ऐ. ब्रा ४।२७)

अस्मा इदु प्रतवसे तुरायेति नोधाः
स एते प्रातः सवने षळहस्तोत्रियांच्छस्त्वा
माध्यंदिनेऽहीनसूक्तानि शंसति। (ऐ. ब्रा. ६।१८)
नौधसं च कालेयं चानूच्ये। (ऐ. ब्रा.८।१२;१७)

' नौधस् ' नामक सामगान है जो नोधा ऋषिका गाया है। 'अस्मा इदु' (ऋ.१।६१) यह सूक्त नोधा ऋषिका है। नोधाके मंत्र राज्याभिषेकके समय बोले जाते हैं। यह ऐतरेय ब्राह्मणमें नोधा ऋषिके विषयमें कहा है।

ऋग्वेदमें इस ऋषिका नाम निम्नलिखित मंत्रोंमें आया है–

सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः। (ऋ. १।६१।१४)
सनायते गोतम इन्द्र नव्यं।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः (ऋ. १।६२।१३)
नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः। (ऋ. १।६४।१)
नोधा इवाविरकृत प्रियाणि। (ऋ. १।१२४।४)

इन मंत्रोंमें ' नोधा ' ऋषिका नाम आया है और उसका गोत्र भी ' गोतम ' कहा है। ये मंत्र यहां दिये हैं। नोधाके विषयमें इतनाही पता लगता है। पञ्चविंश ब्राह्मणमें ' नोधा ' का थोडासा उल्लेख आया है।

अस्तु इस तरह नोधा ऋषिका तत्त्वज्ञान इस मन्त्रसंग्रहसे विदित हो सकता है।

निवेदक
भाद्रपद संवत् २००३
श्री. दा. सातवळेकर
स्वाध्याय-मण्डल
औंध, जि. सातारा

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

नोधा ऋषिका दर्शन

[ऋग्वेदका एकादश अनुवाक]

(१) अजर अमर अग्नि।

(ऋ.१।५८) नोधा गौतमः। अग्निः। जगती, ६—९ त्रिष्टुप्।

नू चित् सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद् विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति १
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् २
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ३

अन्वयः— १ नू चित् सहो-जाः अमृतः (अग्निः) नि तुन्दते। यत् विवस्वतः दूतः अभवत्, साधिष्ठेभिः पथिभिः रजः वि ममे, देवताता हविषा आ विवासति॥

२ अजरः (अग्निः) स्वं अद्म युवमानः तृषु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति। प्रुषितस्य पृष्ठं, अत्यः न, रोचते। दिवः सानु न स्तनयन् अचिक्रदत्॥

३ क्राणा, रुद्रेभिः वसुभिः पुरोहितः, होता, अमर्त्यः रयि-षाट् निषत्तः देवः, रथः न, विक्षु ऋञ्जसानः आयुषु आनु-षक् वार्या वि ऋण्वति॥

अर्थ— १ निःसन्देह बलके साथ उत्पन्न हुआ यह अमर (अग्नि देव) कभी व्यथित नहीं होता। जिस समय वह विवस्वान्‌का सहाय्यकारी हुआ, उस समय उत्तम सहाय्यक मार्गोंसे उसने अन्तरिक्ष-लोकमें गमन किया (प्रकाश किया और) देवताओंकी शक्ति फैलानेके कार्यमें (यज्ञमें) हविके अर्पणसे (देवोंका) अदरातिथ्य भी किया॥

२ जरारहित (अग्नि) अपने भक्ष्यके साथ मिलता हुआ, तुरन्तही (खाद्य) खाकर, काष्ठोंपर (जलता) रहता है। घी सिंचित होनेपर वह, घोडेके समान, शोभता है। और द्युलोकके शिखर (पर रहनेवाले मेघ) के समान गर्जता हुआ (बारंबार) शब्द करता है॥

३ कर्तृत्वशाली, रुद्रों और वसुओंद्वारा प्रमुख स्थानमें रखा हुआ, हवनकर्ता, अमर (शत्रुके) धनोंको जीत कर लानेवाला (यहां) विराजमान् (हुआ) देव, रथकी तरह, प्रजाओंमें वर्णनीय होकर, सब लोगोंमें क्रमसे, स्वीकार करने योग्य धन लाता है॥

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ४
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ५
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ६
होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ७
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः ८
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

४ वात-जूतः अतसेषु जुहूभिः सृण्या तुविष्वनिः वृथा वि तिष्ठते । हे अजर रुशदूर्मे अग्ने ! यत् तृषु वनिनः वृषायसे, ते एम कृष्णम् ॥

५ वातचोदितः तपुर्जम्भः वने साह्वान्, यूथे वंसगः न, अव आ वाति । अक्षितं रजः पाजसा अभि व्रजन्, पतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते ॥

६ हे अग्ने ! भृगवः मानुषेषु, जनेभ्यः सुहवं चारुं रयिं न, होतारं अतिथिं वरेण्यं त्वा दिव्याय जन्मने, शेवं मित्रं न, आ दधुः ॥

७ होतारं यजिष्ठं यं अध्वरेषु वाघतं सप्त जुह्वः वृणते, (तं) विश्वेषां वसूनां अरतिं प्रयसा सपर्यामि, रत्नं यामि ॥

८ हे सहसः सूनो, मित्रमहः ! अद्य नः स्तोतृभ्यः अच्छिद्रा शर्म यच्छ । हे ऊर्जो नपात् अग्ने ! आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं अंहसः उरुष्य ॥

९ हे विभावः ! गृणते वरूथं भव । हे मघवन् ! मघवद्भ्यः शर्म भव । हे अग्ने ! गृणन्तं अंहसः उरुष्य । धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

४ वायुद्वारा प्रेरित होकर लकडियोंमें (जब अपनी) ज्वालाओंकी तेजस्विताके साथ बडा शब्द करता हुआ सहजहीसे तू ठहरता है, हे जरारहित तेजस्वी ज्वालाओंवाले अग्ने ! तब तत्काल वृक्षोंमें अपना बल प्रकट करते हुए तुम्हारा मार्ग काला (दिखाई देता है) ॥

५ वायुद्वारा प्रेरित हुआ, ज्वालारूप दंष्ट्रावाला (अग्नि) वनमें बलसे, गौसमुदायमें सांडकी तरह, घूमता है। जब वह अक्षय अन्तरिक्षमें अपने बलसे घूमता है, तब सारे स्थावर जंगम इस पक्षी (के समान वेगसे जानेवाले) से डरते हैं ॥

६ हे अग्ने ! भृगुलोगोंने मानवोंमें, लोगोंको सुखसे प्रार्थना करनेयोग्य, सुंदर धनकी तरह (पास रखनेयोग्य) श्रेष्ठ अतिथि ऐसे तुझको, दिव्य जन्मवालोंको भी सेवा करनेयोग्य मित्रकी तरह, धारण किया ॥

७ देवोंको बुलानेवाले यजनीय, हिंसारहित यज्ञोंमें प्रशंसनीय जिस (देवको) सात ऋत्विज स्वीकार करते हैं, उस सब धनोंके दाताकी अन्नके समर्पणद्वारा मैं सेवा करता हूं। (इससे) मैं धन भी (प्राप्त करना)चाहता हूं।

८ हे बलसे उत्पन्न होनेवाले (अग्ने) ! मित्रका महत्त्व बढानेवाले अग्ने ! आज हम सब स्तोताओंके लिये अखण्ड सुख दो। हे बलको न गिरानेवाले (अग्ने) ! लोहेकी नगरियोंसे (जैसा जनताका बचाव करते हैं वैसा) स्तोताका पापसे रक्षण करो।

९ हे तेजस्वी देव ! स्तोताको सुख दो। हे धनवान् ! धनवानोंको सुख दो । हे अग्ने ! स्तोताको पापसे बचाओ । बुद्धिसे धन देनेवाला अग्निदेव आज प्रातःसमयमें शीघ्रही आवे ॥

अग्निके विशेषणोंका विचार

इस सूक्तमें अग्निका वर्णन है। इस अग्निका स्वरूप निश्चित करनेके लिये जो विशेषण अर्थात् गुणवर्णन करनेके लिये एक या अनेक शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, उनका विचार करना चाहिये। इस सूक्तका अग्निवर्णन यह है —

१. सहो-जाः— बलसे उत्पन्न, बलके लिये उत्पन्न। बल उत्पन्न करनेवाला। दो अरणियोंका घर्षण करनेके लिये बडा बल लगता है, इस घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है, इसलिये अग्निको 'सहोजाः' कहते हैं। द्युलोक पिता है 'द्यौ·पिता, द्युपिता (ज्युपिटर) और पृथ्वी माता है, इनके संयोगमेंसे सूर्यकी उत्पत्ति होती है। उत्तरीय ध्रुवमें द्युलोकका गोल घूमना प्रत्यक्ष है। प्रदक्षिणा-रूपमें घूमना वहां प्रत्यक्ष है, यह सूर्य भी द्यावा-पृथिवीका कवि-कल्पनासे पुत्रही है। पिता माता ये दो अरणी हैं, इनका 'पुत्र' अग्निही है। इसलिये सूर्य और पुत्र ये भी 'सहोजाः' हैं। यह एकही सहोजा शब्द अग्नि, सूर्य और पुत्रपरक अर्थ दिखाता है।

२. अमृतः— (अ-मृतः) अमर अग्नि है, सूर्य भी अमर है। पुत्रका आत्मा भी अमर है। अनेक देहोंमें एकही आत्मा रहनेके कारण वह अमर कहलाता है।

३. सहोजाः अमृतः नि तुन्दते— बलके साथ उत्पन्न हुआ अमर व्यथित नहीं होता। जो बलवान् है और जो मरनेवाला नहीं है उसको किसी तरहके कष्ट नहीं हो सकते, यह स्पष्टही है। क्योंकि जो निर्बल हैं और जिसको मृत्युका भय है वही सदा दुःखी होगा। इसलिये सुख प्राप्त करनेकी इच्छा है तो बल प्राप्त करना चाहिये और अपना आत्मदृष्टिसे अमरत्व जानना चाहिये।

४. साधिष्ठेभिः पथिभिः रजः वि ममे — उत्कृष्ट मार्गोंसे मार्गका आक्रमण करना चाहिये। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाना हो तो जो उत्तमसे उत्तम मार्ग हो उसीसे जाना सुखकारक है। अन्य मार्गोंसे जानेका यत्न किया जाय तो निःसन्देह वह दुःख बढाएगा।

५. देवताता— (देव-ताता) देवत्वका विस्तार, दैवी संपत्तिका फैलाव करनेके कर्मही यज्ञ हैं। सब मनुष्योंको इसी कारण इनसे सुख होता है। जो अग्नि है वह ऐसे कर्म-संपन्न करता है, (अग्निः देवताता आ विवासति) अग्नि यज्ञोंको — देवत्वका विस्तार करनेवाले कर्मोंको संपन्न करता है। मनुष्य अग्निरूप है, इसलिये उसको ऐसे कर्म करने चाहिये। (मं. १)

६. अजरः (अ-जरः)-जरारहित,

७. स्वं अन्न युयमानः— अपने लिये जो भक्षणयोग्य वस्तु है उसको खानेवाला। 'अन्न' वह वस्तु है कि जो खाने-योग्य है। बालक, तरुण, वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु आदिकोंके लिये, प्रत्येकके लिये 'अन्न' खानेयोग्य वस्तु-पृथक् होती है। जो जिसको खानेके लिये योग्य है वही उसने खायी तो उसको सुख हो सकता है, अन्यथा दुःख निश्चित है।

८. तृषु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति- शीघ्रही अपनी सुरक्षाका उपाय करता हुआ अपने कवचोंमें ठहरो। तृषु= तत्काल, शीघ्र। अतसः= वायु, प्राण, आत्मा, कवच, कीलेकी दिवार, घास, समिधा, लकडी। शीघ्र अपनी सुरक्षा करो और अपने आपको कवचोंमें, कीलोंमें, सुरक्षित स्थानमें रखो। यह सर्व सामान्य उपदेश हरएकके स्मरणमें रखनेयोग्य है। अग्नि शीघ्रही अपनी सुरक्षा करता हुआ बढता है और लकडियोंके आश्रयसे जलता रहता है।

९. घृषितस्य पृष्ठं, अत्यः न रोचते- घीकी आहुति देनेपर अग्नि, घुडदौडके लिये सिद्ध घोडेके समान चमकता है। वैदिक समयमें घुडदौड होती थी, उस कार्यके लिये घोडे तैयार किये जाते थे और लोग उसमें भाग भी लेते थे। (मं. २)

१०. क्राणा— कर्ममें कुशल, उद्यमी, पुरुषार्थी,

११. पुरोहितः— (पुरः हित) आगे रखा हुआ, नेता, अग्रगामी,

१२. अमर्त्यः— अमर,

१३. रयिषाट्— (रयि-षाट्)— शत्रुका पराभव करके उसका धन छीनकर लानेवाला,

१४ देवः — दैवी संपत्तिसे युक्त, दिव्य गुणवाला, शुभ गुणोंसे युक्त, प्रकाशमान्,

१५ विश्वः अध्वसानः— मनुष्योंमें जो अपने ध्येयकी सिद्धिके लिये यत्न करता है, उन्नतिके लिये यत्नशील, प्रगति करनेवाला,

१६. आयुषु आनुषक् वार्या चि ऋण्वति— मानवोंमें सदा स्वीकार करनेयोग्य जो धन हैं उनको लाता है, प्राप्त करता है। अयोग्य वस्तुका स्वीकार नहीं करता, प्रत्युत योग्य वस्तुकाही स्वीकार करता है। (मं.३.)

१७. वातजूतः— वायुसे प्रेरित। सदाही वायुकी साथ रहनेसेही अग्नि जलता है।

१८. अतसेषु तिष्ठति- (देखो टिप्पणी सं, ८)

१९ जुहुभिः सृण्या— ज्वालारूपी शस्त्रके साथ, ज्वालारूप शस्त्रसे अग्नि लकडियोंको काटता है, लकडियोंको जला देता है,

१०. रुशदूर्मिः— (रुशत्-ऊर्मिः)- तेजस्वी लहरोंवाला, तेजस्वी ज्वालाओंसे युक्त। यहा ऊर्मि' पद ज्वालाके लिये प्रयुक्त हुआ है, जो समुद्रकी लहर का वाचक है।

११. वनिनः वृषायसे— वनमें रहनेवाले वृक्षों, उनकी लकडियोंपर अपना प्रभाव जमा देता है। यहांका 'वनिन्, वन' पद वृक्ष, लकडी, समिधाका वाचक है। लकडीपर प्रभाव जमानेका तात्पर्य जलाना है।

१२. ते कृष्णं एम— तेरा काला मार्ग है। वनमें अग्नि वृक्षोंको जलाता हुआ जब जाता है तो वह उसका गमन मार्ग काला दीखता है। इस काले मार्गको देखनेसे पता चलता है कि इस मार्गसे अग्नि गया है। (मं. ४)

१३. वात-चोदितः— वायुसे प्रेरित। (टिप्पणी १७ देखो)

१४. तपुर्जम्भः — तपुः = उष्णता, आग, ज्वाला। जम्भः- जबडा, मुख, दंष्ट्रा। ज्वाला ही जिसका जबडा है।

१५. वने साहान्— वनका-वृक्षोंका-पराभव करता है, वृक्षोंको जलाता है।

१६. अक्षितं रजः पाजसा अभिव्रजन्-अक्षयं अन्तरिक्षमें बलसे भ्रमण करता है। धधकती हुई दावानलकी ज्वालाएं अन्तरिक्षमें घूमती हैं।

१७. पंतत्रिणः स्थातुः चरथं भयते- इस पक्षीसदृश वेगसे घूमनेवाले दावानल-अग्नि-को देखकर स्थावर जंगम, सबका सब वस्तुजात भयभीत होता है। (मं. ५)

१८. भृगवः मानुषेषु अनेभ्यः दिव्याय जन्मने वरेण्यं आ दधुः- भृगुवंशके ऋषियोंने सब मानव समाजमें सब मानवोंके (कल्याण करनेके) लिये, उनका दिव्य जन्म, द्विजत्व सिद्ध करनेके लिये, उनमें इष्ट परिवर्तन करनेके लिये इस श्रेष्ठ (अग्नि) को धारण किया। यज्ञमें स्थापित किया। भृगुवंशके ऋषियोंने सब जनताकी उन्नति करनेके लिये यज्ञ-संस्थाके द्वारा जो रचना की उसमें अग्नि-उपासना प्रमुख स्थान रखती है।

१९. सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः- उत्तम प्रार्थना करनेयोग्य, सुंदर रमणीय, देवोंको बुलानेवाला, अतिथिके समान पूजनीय। अतिथिः- (अति, अतति) जाता है, जाता है। जब अग्नि लकडियोंको खाता हुआ आगे जाता है, तब उसको ' अतिथि ' कहा जाता है। (मं. ६)

३०. अध्वरेषु वाघतः- हिंसारहित अकुटिल कर्मोंमें जिसकी प्रशंसा की जाती है।

३१. यजिष्ठः- पूजनीय, यजनीय,

३२. विश्वेषां वसूनां अरतिः- सब धनोंका दाता (मं. ७)

३३. सहसः सूनुः— बलका पुत्र (देखो टिप्पणी सं. १)

३४. मित्रमहः- मित्रकी महत्ता बढानेवाला,

३५. अच्छिद्रं शर्म यच्छ- अक्षय सुख देता है।

३६. ऊर्जः न पात्- शक्तिका नाश-पतन-न करनेवाला (टिप्पणी १ और ३३ देखो) शक्तिको बढानेवाला।

३७. आयसीभिः पूर्भिः गृणन्तं उरुष्य- लोहेकी नगरियोंसे-कीलोंसे स्तोताकी सुरक्षा कर। स्तोताके चारों ओर कीलेकी दिवारें हों, ऐसा और इतना धन उसके पास-तुम्हारे भक्तके पास हो। (मं. ८)

३८. वि-भा-वसुः— विशेष प्रकाशसे युक्त,

३९. मघवा- धनवान्, प्रकाशरूप धनसे युक्त,

४०. धिया-वसुः- बुद्धिसे, कर्मसे धन देनेवाला, प्रथम बुद्धि सुसंस्कृत करे, तत्पश्चात् उत्तम कर्म करे, तो धन मिलेगा।

परमेश्वरका स्वरूप

यहां इस सूक्तमें 'अमृतः, अजरः, अमर्त्यः, देवः, मघवा' ये पद परमेश्वर, परमात्माके स्पष्ट वाचक हैं। " सहोजाः, क्रत्वा, पुरोहितः, रयिषाट्, रुशदूर्मिः, वरेण्यः, सुहवः, चारुः, होता, अतिथिः, अध्वरेषु वाघतः, यजिष्ठः, विश्वेषां वसूनां अरतिः, मित्रमहः, सहसः सूनुः, ऊर्जो न पात्, विभावसुः, धियावसुः " ये

पद भी परमात्माके वाचक हो सकते हैं। इसी तरह कई वर्णन इस सूक्तके परमात्माके वर्णन जैसेही हैं।

इसका कारण यह है कि ऋषि 'अग्नि' पदसे जीव, शिव (परमेश्वर, परमात्मा, परब्रह्म) और प्राकृतिक अग्नि आदि देव इनका ग्रहण करते थे। 'तदेव अग्निः' (वा. य. ३२।१) 'एकं सद्, विप्रा बहुधा वदन्ति, अग्निं यमं।' (ऋ. १।१६४।४६) वह ब्रह्मही अग्नि है, सत् एकही है, ज्ञानी लोग उसी एकका वर्णन अग्नि, यम आदि अनेक नामोंसे करते हैं। ऋषिलोग इस सच्चाईसे परिचित थे। इसलिये वे अग्निका वर्णन करते करते यह परमात्माका रूप है ऐसा अनुभव करके उसके वर्णनमेंही परमात्माकाही वर्णन करते हैं।

यदि 'सत्' एकही है, तब तो अग्नि परमात्माकाही रूप है। वास्तवमें विश्वरूपही परमात्मा है। अर्थात् विश्वान्तर्गत अग्नि भी परमात्माका रूप हुआ। इसलिये अग्निके वर्णनके साथ परमात्माका वर्णन होना युक्तियुक्तही है।

एकही सत् है, परमात्मा विश्वरूप है, अतः सब विश्व एकही सत्का रूप है। हमारी इंद्रियां संपूर्ण सत्का ग्रहण कर नहीं सकतीं, परन्तु एक एक गुणका ग्रहण कर सकतीं हैं। आंखने रूपका ग्रहण किया और कानने शब्दका ग्रहण किया, इससे रूपवान् अग्नि और शब्दगुणवान् आकाश परस्पर तत्वतः विभिन्न नहीं हो सकते। जो विश्वरूपमें एक 'सत् तत्त्व' प्रकट हुआ उसके ही गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध हैं। एक सत् तत्त्व ये पांच गुण हैं। हमारी इंद्रियां एक एक गुणका ग्रहण करती हैं, दूसरे गुणका नहीं करतीं, यह हमारे इंद्रियोंकी कमजोरी है, उस कारण उस सत्में किसी तरह न्यूनता नहीं होती।

ऋषि दिव्यदृष्टिसे संपूर्ण सत्तत्त्वका ग्रहण कर सकते थे, इसलिये वे अग्निके रूपमें परमात्माका अनुभव करते थे। यह उनकी दृष्टिकी दिव्यता है। जिसको यह दिव्यता नहीं प्राप्त हुई वह अग्निको परमात्मासे विभिन्न मानता है, यह अपूर्ण दृष्टि है। ऋषिकी दृष्टि संपूर्ण दिव्यदृष्टि थी इसीलिये वे विश्वको परमात्मरूप मानते और विश्वान्तर्गत अग्नि आदि देवताओंको भी भगवद्रूपही अनुभव करते थे। इसलिये उनके वर्णनमें, अग्निके वर्णनमें भी-परमात्माका वर्णन हुआ करता था। पूर्ण दृष्टि और अपूर्ण दृष्टिका यह भेद है। जिसकी दृष्टि पूर्ण होगी वह विश्वभरमें एकही सत्को देखेगा और ऐसाही वर्णन करेगा।

(२) विश्वका नेता

(ऋ. १।५९) गोधा गौतमः। अग्निर्वैश्वानरः। त्रिष्टुप्।

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद् ययन्थ
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय

अन्वयः- १ हे अग्ने! अन्ये अग्नयः ते वयाः इत्। विश्वे अमृताः त्वे मादयन्ते। हे वैश्वानर! क्षितीनां नाभिः असि। उपमित् स्थूणा इव जनान् ययन्थ॥

२ अग्निः दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः। अथ रोदस्योः अरतिः अभवत्। तं त्वा देवं देवासः अजनयन्त। हे वैश्वानर! आर्याय ज्योतिः इत्॥

अर्थ- १ हे अग्ने! दूसरे सब अग्नि तेरी शाखाएं हैं। सब देव तेरे पाससेही आनन्द पाते हैं। हे विश्वके नेता! सब मानवों-प्राणियोंका-तू नाभि हो। समीपस्थ स्तम्भके समान सब जनोंका तू आधार हो॥

२ यह अग्नि द्युलोकका सिर और पृथ्वीकी नाभि है। वह द्यावापृथ्वीका स्वामी है। उस तुझ देवको सब देव प्रकट करते हैं। हे विश्वके नेता! आर्योंके लिये तूने प्रकाशका (मार्ग) बताया है॥

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ३
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ४
दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ५
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत् ६
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ७

---

३ सूर्ये ध्रुवासः रश्मयः न, वैश्वानरे अग्ना वसूनि आ दधिरे । या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु या मानुषेषु तस्य राजा असि ॥

४ रोदसी सूनवे बृहती इव । मनुष्यः न, दक्षः होता स्वर्वते सत्यशुष्माय नृतमाय वैश्वानराय पूर्वीः यह्वीः गिरः ॥

५ हे जातवेदः वैश्वानर ! ते महित्वं बृहतः दिवः चित् प्र रिरिचे । मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि । युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ ॥

६ वृषभस्य महित्वं प्र वोचं नु । पूरवः यं वृत्रहणं सचन्ते । वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् । काष्ठाः अधूनोत्, शम्बरं अव भेत् ॥

७ वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः, भरद्वाजेषु यजतः विभावा । शातवनेये पुरुणीथे सूनृतावान् अग्निः शतनीभिः जरते ॥

३ सूर्यमें जिस तरह स्थायी प्रकाश किरण रहते हैं, उसी तरह इस विश्वके नेता अग्निमें सब धन रहते हैं। जो पर्वतों, औषधियों, जलों, तथा मानवोंमें संपत्तियाँ हैं, उसका तू राजा है ॥

४ द्यावापृथिवी इस पुत्र (रूप विश्वनेताके लिये) बडी भारी विस्तृत सी हो गयी हैं। मनुष्यके समान दक्ष होता इस सामर्थ्यवान्, सत्य बलसे युक्त, मानवश्रेष्ठ विश्वनेताके लिये प्राचीनकालसे चली आयी विशाल स्तुतियां गाते हैं ॥

५ हे वेदज्ञाता विश्वनेता ! तेरी महिमा बडे द्युलोकसे भी बडी है। मानवी प्रजाओंका तू राजा है। तुम युद्धसे देवोंके लिये धन देते हो ॥

६ मैं बलवान् देवका महात्म्य वर्णन करता हूं। सब नागरिक जन इस वृत्रनाशकके पास पहुंचते हैं। विश्वनेता अग्नि दस्युका वध करता है, दिशाओंको हिला देता है, और शम्बरका भेदन करता है ॥

७ वह विश्वनेता अपनी महिमासे सब मानवही है। अन्नका दान करनेवालोंमें यह पूजनीय और वैभवशाली है। शतवनके पुत्र पुरुणीथ (के यज्ञ) में यह सत्यवचनी अग्निदेव सैकडों गानोंसे गाया जाता है ॥

विश्वका संचालक

यह सूक्त विश्वके नेताका वर्णन करता है। यह भी एक अग्निही है। इस सूक्तमें सात मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्रमें एकबार 'वैश्वानर' पद है, अर्थात् इस सूक्तमें ७ वार 'वैश्वानर' पद है। 'अग्नि' पद केवल पांचही वार आया है। इस कारण इस सूक्तका देवता 'वैश्वानर' है और गौण रूपसे 'अग्नि' है।

१. **वैश्वानरः**— विश्व + नरः- विश्वका नेता, विश्वमें प्रमुख, विश्वका संचालक, सबका अगुआ चालक (मं. १)

२. **वैश्वानरः महिम्ना विश्वकृष्टिः**- (मं, ७)

यह वैश्वानर कौन है ? यह अपनी महिमासे सब मानवरूप, सब प्राणीका रूप धारण करके है। यह वैश्वानरका स्वरूप है। वही जनता जनार्दन है। वही 'नारायण' (नर + अयनः) है। नरोंका समूहही नारायणका रूप है।

पुरुष एव इदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
एतावान् अस्य महिमा० ॥ (ऋ. १०।९०।२-३)

' पुरुषही यह सब है जो भूतकालमें था और जो भविष्य में होगा । वह इस पुरुषकी महिमाही है । ' पुरुष-सूक्तमें जो ' महिमा ' पद है वही यहां इस सूक्तमें है और दोनों जगह सब मानव-समाजही उस प्रभुका स्वरूप है ऐसा बताया है—

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥
(ऋ. १०।९०।११-१२)

'जिस पुरुषका वर्णन किया गया उसके मुख, बाहु, ऊरू और पांव कौनसे हैं ? ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय इसके बाहु हैं, ऊरू वह है जो वैश्य कहे जाते हैं और पावोंके लिये शूद्र हैं । ' अर्थात् यह पुरुष 'ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य–शूद्र' रूप है । इसीका नाम ' विश्वकृष्टि ' अथवा ' सब मानवसंघ ' है, यही वैश्वानर है ।

३. या पर्वतेषु ओषधीषु अप्सु मानुषेषु तस्य राजा (मं. ३)– जो भी कुछ पर्वतों, ओषधियों, जलों और मानवोंमें है अर्थात् जो इस विश्वमें है, उसका यह राजा है, उस सबका यह स्वामी या अधिपति है । इस सबका व्यय इसकी भलाईके लिये होना चाहिये । इसके यजनके लिये सबका समर्पण होना उचित है ।

४. मानुषीणां कृष्टीनां राजा असि (मं. ५)— मानवी प्रजाजनोंका यह राजा है । सब मानवी प्रजाजनोंका शासन सब मानवी प्रजाओंके द्वारा ही होवे । इसीका नाम स्व-राज्य है । सब मनुष्यही अपना शासन अपनी संमतिके अनुसार करें । समाजका शासन समाजद्वारा समाजकी उन्नतिके लिये हो ।

५. युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ (मं.५)– युद्धसे देवोंके लिये धन दो । धन देवोंकोही मिलना चाहिये । देव वे हैं कि जो दैवी संपत्तिसे युक्त हैं । उनकाही धनपर अधिकार है, धन इनको ही मिलना चाहिये । मानवसमाजमें देव-असुर, देव-दानव, आर्य-दस्यु, आर्य-अनार्य, शुद्ध-पाप, सुष्ट-दुष्ट ऐसे दो प्रकारके मनुष्य होते हैं । इनमें केवल देवोंकाही सब धनपर अधिकार है । वे देव उस धनका उपयोग करके सबकी पालना योग्यरीतिसे करें । किसी तरह असुरोंका अधिकार धनपर नहीं होना चाहिये । इसलिये युद्ध करना आवश्यक हो तो युद्ध भी करना चाहिये और देवोंके हाथमेंही धन रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये । धनपर कब्जा राक्षसोंका हुआ तो जगत्में अनर्थ होते हैं, जनता इससे दुःखी होती है । इसलिये युद्ध करके असुरोंका नाश करके देवोंके अधीन शासनप्रबंध रखना चाहिये ।

*

६. आर्याय ज्योतिः (मं. २)– आर्योंके लिये ही प्रकाशका मार्ग खुला किया है । राक्षस असुरोंका नामही 'निशाचर' है, क्योंकि उनका मार्ग अन्धेरेका है । इसीलिये अनार्योंके अधीन राज्यप्रबंध नहीं रहना चाहिये । जो आर्य हैं उनकेही अधीन राज्यप्रबंध, सब धन (खजाना), और सब बल रहना चाहिये । इसलिये अन्यत्र कहा है —

विजानीहि आर्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते
रंधय शासद् अव्रतान् ॥८॥
अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः । (ऋ. १।५१)

सव्य ऋषि कहते हैं कि– 'आर्य कौन हैं और दस्यु कौन हैं इसको जान लो, नियमानुसार कौन चलते हैं और नियमोंको कौन तोडते हैं, इसको देखो । अनुकूल कर्म करनेवालोंके हितके लिये अपव्रतियोंका नाश करो तथा मातृभूमिके भक्तोंका हित करनेके लिये जो मातृभूमिका तिरस्कार करते हैं उनको दण्ड दो ।

आर्य	दस्यु
व्रती	अव्रत
अनुव्रत	अपव्रत
आभूमिः	अनाभुवः
देव	असुर

इन पदोंसे वैदिक-शासनकी कल्पना हो सकती है ।

७. पूरवः वृत्रहणं सचन्ते । वैश्वानरः अग्निः दस्युं जघन्वान् (मं.६)— नागरिक जन शत्रुका वध करनेवालेकीही सेवा करते हैं । सार्वजनिक अग्रणी दस्युका वध करता है । क्योंकि आर्य और दस्यु ये परस्परके सहायक नहीं हैं । प्रकाश मार्गसे जानेवाले और रात्रीके अंधकारमें जानेवालेकी मित्रता कैसी होगी ? आर्य सबकी भलाई चाहते हैं और दस्यु

अपनी पेट पूर्तिके लिये दूसरोंको लूटते हैं। इसलिये दस्युको दण्ड देकर आर्योंकी सुरक्षा करना योग्य होता है। गुणकर्मोंसे आर्य और दस्यु निश्चित होते हैं।

' वैश्वानर, विश्वनर, सर्वजन, सार्वजनीन, सार्वलौकिक' ये शब्द समान भाव बतानेवाले हैं। वेदमें ' वैश्वानर ' पदसे जो भाव प्रकट होता था, वही आज 'सार्वजनीन, सार्वलौकिक' पदोंसे प्रकट होता है।

८ स्वर्वते सत्यशुष्माय वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः गिरः (म. ४)— आत्मज्ञानी सत्यबली सार्वजनिक हित करनेवाले अत्यन्त श्रेष्ठ नेताके लिये ही विशेष प्रशंसा योग्य है। सब मानवरूपी वैश्वानर है, सर्व मानवही प्रभुका रूप है इसमें संदेह नहीं है, पर इस जनसंमर्दका नेतृत्व किसको मिलना चाहिये इसका उत्तम निर्देश इस मंत्रभागमें है। वह ज्ञानी चाहिये, सत्यनिष्ठाका बल उसके पास चाहिये, सार्वजनिक हित करनेमें वह तत्पर होना चाहिये और सब मानवोंमें वह श्रेष्ठ चाहिये। वही प्रशंसायोग्य है अर्थात् वही पूज्य है और वही उनका नेता होनेयोग्य है।

९. वैश्वानरः नाभिः क्षितीनां (मं. १)- सार्वजनिक हित करनेवाला यह श्रेष्ठ पुरुषही सब मानवोंका, सब जनताका नाभि या केन्द्र अथवा मध्य बिन्दु है। सबके आंख इसी नेता पर लगने चाहियें। शरीरमें जैसी नाभी, वैसा यह नेता राष्ट्रमें होगा।

१०. स्थूणा इव जनान् ययन्थ (मं. १)- जिस तरह स्तंभ सब घरके लिये आधार होता है, उसी तरह यह नेता सब मानवोंके लिये आधार होता है। यह श्रेष्ठ नेता सब जनोंको इस तरह चलाता है जिससे वे उत्कृष्ट सुख शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

११. अन्ये अग्नयः ते वया इत् (मं १)- सभी मानव इस वैश्वानरका रूप है ऐसा कहा है (देखो टिप्पणी सं. २ मं. ७) इसलिये सभी मानव वैश्वानरके रूप हुए, फिर कहा है कि जो ' नृ--तम. ' अत्यंत श्रेष्ठ मानव होगा वही उनका नेता होनेयोग्य है (टिप्प. ८)। फिर अन्य मानवों का स्थान कहा है ? इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्रभागने दिया है— 'अन्य अग्नि इसकी शाखाएं है।' यह नेता वृक्ष है और अन्य मानव उस वृक्षकी शाखाएं, टहनियाँ, पत्ते आदि हैं। सब मिलकर एकही अखण्ड वृक्ष है। तथापि नेता स्कंध है और अन्य मानव छोटी मोटी शाखाएं हैं। नेताका जनताके साथ यही संबंध रहना चाहिये।

१२. विश्वे अमृताः त्वे मादयन्ते (मं. १)— सब देव तुझमेंसे आनन्द प्राप्त करते हैं। सार्वजनिक हितमें आनन्द माननाही देवत्वका लक्षण है। यहां ' त्वे ' का अर्थ 'वैश्वानर' है अर्थात् सर्व मानव-समाज। इसके हितमेंही श्रेष्ठ लोग आनन्द प्राप्त करते हैं।

१३. दिवः मूर्धा, पृथिव्याः नाभिः, रोदस्योः अरतिः (मं. २)— यह वैश्वानर द्युलोकका सिर, पृथ्वीका मध्य, और दोनों लोगोंका स्वामी है। ' अरति ' का अर्थ- असंतोष, रति न रखना, विरक्ति, क्रोध, गति, व्यवस्थापक, प्रबंधकर्ता, स्वामी, बुद्धिमान् ज्ञानी।

१४. देवासः वैश्वानरं अजनयन्त (मं. २)-सब देवोंने वैश्वानरको प्रकट किया। सब मानवसंघही सबका उपास्य है, यही यहाँ मुख्य है यह तत्त्व ज्ञानियोंनेही सबको सुनाया, प्रसिद्ध किया।

१५ सूर्ये रश्मयः न, वैश्वानरे वसूनि आ दधिरे (मं. २)— सूर्यमें जैसे किरण रहते हैं, वैसेही इस वैश्वानरमें सब धन रहते हैं। सूर्यमें जैसे किरण निजरूप होकर रहते हैं, वैसेही सब धन इस मानवरूप देवकेही अपने हैं। अर्थात् सब धन मानवसंघके हैं, किसी भी व्यक्तिके नहीं हैं। इसीलिये व्यक्तिको सब धनोंका त्याग समाजके हितके लिये करना आवश्यक है क्योंकि व्यक्तिका धन हैही नहीं, सब धन समाज, या समष्टिकाही है। (टिप्प. ३ देखो)

१६ सूनवे रोदसी बृहती (मं ४)— प्रत्येक सुपुत्रके लिये यह द्यावापृथिवी एक बडा भारी कार्यक्षेत्र है। प्रत्येक मानवके लिये यही कार्यक्षेत्र है, यह हरएकको ध्यानमें रखना चाहिये।

१७. दिवः चित् वैश्वानरस्य महित्वं प्र रिरिचे (मं. ५)- द्युलोकसे भी इस वैश्वानर-सब जनताका-महत्त्व अधिक है, क्योंकि यही सबका उपास्य और सेवा करनेयोग्य है।

१८. काष्ठाः अधूनोत्, शंबरं अव भेत् (मं. ६)- सब दिशाओंमें रहनेवाले शत्रुओंको इसने हिला दिया, शंबरका नाश किया। सार्वजनिक शत्रुका नाश करनेमें किसी तरह कसूर करनी नहीं चाहिये।

१९. मघवाजेषु यजतः (मं. ७)— अन्नदान करनेवालोंमें यही पूजनीय देव है। अन्नदान करनेमें सब जनोंकी सुस्थिति ही मुख्यतया देखनी होती है।

इस तरह इस सूक्तमें राज्यशासनका रहस्य कहा गया है। वास्तवमें प्रकट तौरपर यह अग्निसूक्त है, इसलिये इसमें अग्निका वर्णन है। पर अग्निके अनेक रूपोंमेंसे यहां 'वैश्वा-नर' (सार्व-मानुष) अग्निका विशेष रीतिसे वर्णन है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
(कठ २।५।९)

'अग्नि सब पदार्थोंमें प्रविष्ट हुआ है इसलिए प्रत्येक रूपमें वह उस रूपवाला बना है।' अर्थात् वही अग्नि मानवोंमें मानवरूप लिये कार्य कर रहा है। इसीलिये (वैश्वा-नर) सर्व मानवसंघ यह अग्निका रूप है जिसका वर्णन इस सूक्तमें है।

इस कारण जिस तरह इस सूक्तमें 'मानव-संघ'की सुव्यवस्थाके निर्देश हैं, उसी तरह अग्निके और परमात्माके भी इन्हीं पदोंसे मुख्य तथा गौणवृत्तिसे वर्णन हैं। इस सूक्तके कौनसे वर्णन केवल अग्निपरक हैं और कौनसे परमात्मपरक हैं इसका विवेक पाठक स्वयं कर सकते हैं। यहां सार्वमानुषरूपका वर्णन स्पष्टीकरणके साथ बताया है, जो मानवों की उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है।

शेष बातें पाठक मननद्वारा जान सकते हैं।

(३) आदर्श प्रजापालक

(ऋ. १।६०) नोधा गौतमः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद् भृगवे मातरिश्वा १
अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित् पूर्वो न्यसादि होता ऽऽपृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः २
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ३

अन्वयः— १ यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं सद्योअर्थं द्विजन्मानं दूतं, रयिं इव प्रशस्तं, रातिं वह्निं मातरिश्वा भृगवे भरत्॥

२ हविष्मन्तः उशिजः, ये च मर्ताः, उभयासः अस्य शासुः सचन्ते। आपृच्छ्यः वेधाः होता विश्पतिः दिवः चित् पूर्वः न्यसादि॥

३ हृदः आ जायमानं तं मधुजिह्वं, अस्मत् नव्यसी सुकीर्तिः अश्याः। प्रयस्वन्तः ऋत्विजः आयवः मानुषासः यं वृजने जीजनन्त॥

अर्थ— १ यशस्वी, यज्ञका ध्वज, सम्यक् रक्षाके योग्य, तत्काल अर्थ-प्राप्ति करनेवाला द्विजन्मा दूत, प्रशस्त धनके समान, दाता अग्निको, वायु (प्रदीप्त करके) भृगुवंशीके पास ले आवे॥

२ हविवाले (उन्नतिकी) इच्छा करनेवाले (याजक) और जो (साधारण) मानव हैं, ये दोनो इसके शासनमें रहते हैं। यह प्रशंसनीय, कर्मकुशल, हवनकर्ता, प्रजापालक, दिनका उदय होनेके पूर्व ही (यहां तैयार होकर) बैठा है॥

३ (भक्तोंके) हृदयमें प्रकट होनेवाले उस मधुरभाषणी (अग्नि)को हमारी नवीन सुकीर्ति प्राप्त हो। अन्न लेकर (यज्ञ करनेवाले) ऋत्विज प्रगतिशील मानव इस (अग्नि) को यज्ञस्थानमें प्रकट करते हैं॥

उशिक् पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद् रयिपती रयीणाम् ४
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजंभरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ५

४ उशिक् पावकः वसुः वरेण्यः होता विक्षु मानुषेषु अधायि । दमूना गृहपतिः रयीणां रयिपतिः अग्निः दमे आ भुवत् ॥

५ हे अग्ने ! वयं गोतमासः तं त्वा रयीणां पतिं मतिभिः प्र शंसामः । वाजंभरं आशुं न मर्जयन्तः, धियावसुः प्रातः मक्षू जगम्यात् ॥

४ (उशति) चाहनेवाले, शुद्ध करनेवाले, निवास हेतु, श्रेष्ठ आह्वान करनेवाले (अग्नि) को मानवी प्रजाओंमें स्थापन किया है। (शत्रुका) दमन करनेवाला गृहस्वामी, धनोंका अधिपति, अग्नि अपने स्थानमें प्रकट होता है ॥

५ हे अग्ने ! हम गोतमवंशी लोग उस तुम धनोंके स्वामी (अग्नि) की अपनी बुद्धियोंसे प्रशंसा करते हैं जैसे अन्नको ढोकर लानेवाले घोडेको शुद्ध करते हैं । बुद्धिवैभववान् (यह अग्नि) प्रातः सत्वर ही (हमारे पास) आ जावे ॥

प्रजापतिका शासन

आदर्श स्वामी

इस सूक्तमें आदर्श स्वामीका वर्णन है, यह प्रजाओंका स्वामी है, यह प्रजाओंका पालक और रक्षक है, सब प्रकारकी प्रजाकी उन्नति करनेवाला है, देखिये इसका वर्णन किन शब्दोंसे किया है—

१. यशाः– यशस्वी, जो कार्य हाथमें लेगा वह यथा योग्य रीतिसे पूर्ण करनेवाला, अन्ततक पहुंचानेवाला,

२. विदथस्य केतुः—यज्ञका ध्वज, युद्धका झण्डा, ज्ञान-प्रचारका सूचक,

३. सुप्राव्यः— उत्तम रक्षा करनेवाला, रक्षणीय,

४. सद्योअर्थः— जो प्राप्तव्य अर्थ है उसको शीघ्र देनेवाला, अभीष्टकी सिद्धि करनेवाला,

५. द्विजन्मा— दोवार जन्मनेवाला, एक मातासे और दूसरा विद्यासे ऐसे जो जन्मोंसे युक्त, अर्थात् अत्यंत विद्वान्, विद्याव्रत स्नातक ।

६. दूतः– सेवकके समान प्रजाकी सेवा करनेवाला (नेता होना चाहिये),

७. रयिः इव प्रशस्तः– धनके समान प्रशंसायोग्य,

८. रातिः– दाता, दानशील,

९. वह्निः– पहुंचानेवाला, उन्नतितक ले जानेवाला (मं. १)

१०. उभयासः अस्य शासुः सचन्ते– दोनों प्रकारके लोक इस प्रजाशासककी आज्ञा मानते हैं, इसीकी सेवा करते हैं दोनों प्रकारके लोग अर्थात् ज्ञानी अज्ञानी, धनवान् निर्धन, सबल-निर्बल आदि,

११. आपृच्छ्यः– वर्णन करनेयोग्य, कठिनताके विषयमें, कठिनता दूर करनेके उपाय जिसके पास जाकर पूछे जा सकते हैं,

१२. वेधाः— जो नवीन रचना उत्तम रीतिसे कर सकता है,

१३. होता— (ज्ञानी आदिकोंको) अपने पास बुलानेवाला,

१४. विश्पतिः– प्रजाजनोंका पालनकर्ता, रक्षक,

१५. दिवः पूर्वं न्यसादि– सूर्यके उदय होनेकेही पूर्व अपना कर्तव्य करनेके लिये जो बैठता है, निरलस, (मं. २)

१६. हृदः आ जायमानः— प्रजाओंके हृदयोंमें जो प्रकट होता है, अन्तःकरणोंमें जिसने स्थान प्राप्त किया है ।

१७. मधुजिह्वः– मधुरभाषण करनेवाला,

१८. अस्मत् सुकीर्तिः अश्याः– हमारी प्रशंसा जिसे प्राप्त होती है, हम जिसका वर्णन करते हैं, हमारी कीर्तिही जिसका ध्येय है ,

१९. आयवः मानुषासः यं वृजने जीजनन्त— प्रगति करनेवाले मनुष्य जिसको कठिन समयमें प्राप्त करते हैं ।

वृजन= तेज, शक्तिमान्, गतिमान्, पाप, आपत्ति, शक्ति, युद्ध, इन्द्र । (मं. ३)

१०. उशीक्- उन्नतिकी इच्छा करनेवाला,

११. पावकः— शुद्धता, पवित्रता करनेवाला,

१२. वसुः— सबका निवासक, रहनेके लिये स्थान देनेवाला,

१३. वरेण्यः— श्रेष्ठ, वरिष्ठ,

१४. विक्षु मानुषेषु अधायि— जो जनतामें मिल जुलकर रहता है,

१५. दमूना— शत्रुका दमन करनेवाला,

१६. गृहपतिः— अपने घरका संरक्षण करनेवाला, अपने स्थानकी सुरक्षा करनेवाला,

१७. रयीणां रयिपतिः— धनोंका पालक, सब प्रकारके धनोंकी सुरक्षा करनेवाला.

१८. दमे आभुवत्— अपने घर, स्थान वा देशमें प्रभावी रीतिसे रहता है (मं. ४)

१९. रयीणां पतिः— धनोंका स्वामी,

२०. वाजंभरः— अन्न और बलका पोषक,

२१. धियावसुः— बुद्धिसे धन प्राप्त करनेवाला, (मं.५)

यहां प्रजाका पालक कौन हो, उसमें कौनसे गुण हों, इसका वर्णन इन शब्दोंमें पाठक देख सकते हैं। इन शब्दोंसे जिन गुणोंका वर्णन होता है वे गुण आदर्श शासकमें होने चाहिये। अथवा इन गुणोंसे जो युक्त हो, उसको प्रजापतिके स्थानके लिये नियुक्त करना योग्य है। पाठक इन गुणोंका अच्छी तरह मनन करें।

यहां वास्तवमें अग्निका वर्णन है, पर अग्निके वर्णनके मिषसे उत्तम नेताके, उत्कृष्ट प्रजाशासकके गुण यहां बताये हैं, वे निःसंदेह उत्तम आदर्श शासनाधिकारीके सूचक हैं।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके अन्तिम सप्तम मन्त्रमें 'वयं गोतमासः' (हम गोतम-गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषिगण) ऐसा अपना गोत्र नाम ऋषि बता रहा है।

ऋ. १।५८ में 'भृगवः' पद भृगु गोत्रके ऋषियोंका वाचक दीखता है। ऋ. १।५९में 'भरद्वाज' पद है। 'शातवनेय' पद है। शातवनेय यह राजा भरद्वाज ऋषिका आश्रयदाता प्रतीत होता है। ऋषि भरद्वाज शातवनेयका पुरोहित होगा।

इन तीन सूक्तोंमें ऋषिका पता इतनाही लगता है।

(४) प्रभावी इन्द्र

(ऋ. १।६१; अथर्व २०।३५।१-१६) नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा १
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त २

अन्वयः- १ अस्मै इत् उ तवसे तुराय माहिनाय ऋचीषमाय अध्रिगवे इन्द्राय, प्रयः न, ओहं स्तोमं राततमा ब्रह्माणि प्र हर्मि ॥

२ अस्मै इत् उ, प्रयः इव, प्र यंसि । बाधे सुवृक्ति आङ्गूषं भरामि । प्रत्नाय पत्ये इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा धियः मर्जयन्त ॥

अर्थ- १ इसही समर्थ शीघ्रकारी, महिमावाले, वर्णनीय गुणवाले, अप्रतिबंधगतिवाले इन्द्रके लिये मैं, अन्नके (दानके) समान, मननीय स्तोत्र और दातृत्वकी जिनमें अधिक प्रशंसा है ऐसे मंत्र अर्पण करता हूं (कहता हूं) ॥

२ (मैं) इस (इन्द्र) के लिये, अन्न देनेके समानही (सोमरस) देता हूं। शत्रुका नाश करनेवाले (इन्द्र) के लिये उत्तम स्तोत्र अर्पण करता हूं। (विद्वके) पुराने रक्षक इन्द्रके लिये हृदय, मन और बुद्धिसे विचारोंको शुद्ध करनेवाले (अनेक स्तोत्र) किये हैं ॥

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ३
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ४
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ५
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद् विदद् येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ६
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता ७
अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ८

---

३ मतीनां सुवृक्तिभिः अच्छोक्तिभिः मंहिष्ठं सूरिं वावृधध्यै अस्मै इत् उ त्यं उपमं स्वर्षां आंगूषं आस्येन भरामि ॥

४ (अहं) त्वष्टा इव रथं न, अस्मै इत् उ तत्सिनाय गिर्वाहसे मेधिराय इन्द्राय स्तोमं गिरः विश्वं इन्वं च सुवृक्ति सं हिनोमि ॥

५ वीरं दान-ओकसं पुरां दर्माणं गूर्तश्रवसं वन्दध्यै अस्मै इत् उ इन्द्राय, सप्तिं इव, श्रवस्या जुह्वा अर्कं सं अञ्जे ॥

६ कियेधा ईशानः तुजन् येन तुजता वृत्रस्य मर्म चित् विदत् रणाय (तं) स्वपस्तमं स्वर्यं वज्रं त्वष्टा अस्मै इत् उ तक्षत् ॥

७ सहीयान् अद्रिं अस्ता विष्णुः अस्य इत् उ महः मातुः सवनेषु सद्यः पितुं चारु अन्ना पपिवान् पचतं मुषायत्, वराहं तिरः अस्ता ॥

८ देवपत्नीः ग्ना चित् अस्मै इत् उ इन्द्राय अहिहत्ये अर्कं ऊवुः । (अयं) उर्वी द्यावापृथिवी परि जभ्रे, ते अस्य महिमानं न परि स्तः ॥

३ बुद्धिपूर्वक किये उत्तम शत्रुभावनाशक शुभ वाणियों-द्वारा महान विद्वान् (इन्द्र) की महत्ता बढानेके लिये, उसी इन्द्रको, उस उपमायोग्य धनप्रापक घोषको अपने मुखसे मैं भर देता हूं, बोल देता हूं ॥

४ जैसे कारीगर रथको (बनाता है वैसे) इसही सब सिद्धि करनेवाले प्रशंसनीय बुद्धिमान् इन्द्रके लिये मैं अपनी वाणियोंके द्वारा सबको उत्तेजित करनेवाले स्तोत्रको प्रेरित करता हूँ ॥

५ वीर, दानका घर, शत्रुके किलोंको तोडनेवाले, प्रशंसनीय अन्नवाले इन्द्रकी वन्दनाके लिये इसी इन्द्रके पास, घोडेके समान, यशस्वी जिह्वासे स्तुतिस्तोत्रको हम प्रेरित करते हैं ॥

६ कईयोंका धारण करनेवाले इस (विश्वके) स्वामी इन्द्रने (वृत्रको) मारते हुए जिस मारक वज्रसे वृत्रके मर्म-स्थानको ठीक तरह प्राप्त किया था, (मर्मपरही आघात किया था), उस रणके समय उत्तम कर्म करनेवाले शत्रुपर फेंकने योग्य वज्रको त्वष्टाने इसी इन्द्रके लिये बनाया था ॥

७ शत्रुका पराभव करनेवाले, वज्र फेंकनेवाले विष्णुने इसी महान् जगत्के निर्माता इन्द्रके सवनोंमें शीघ्रही अन्न और सुन्दर भोजनका सेवन किया, पके हुए (शत्रुके) अन्नको उठा ले आया और जलभोजी (वृत्र) को तिरस्कार करके वज्र मार दिया ॥

८ पृथिवी आदि देवपत्नियाँ इसी इन्द्रके लिये वृत्रवधके समय स्तुतिस्तोत्र गाती रहीं। वह इन्द्र इन बडी द्यावापृथिवीको भी अपने अधीन रखता है पर वे (दोनों लोक) इसकी महिमाको नहीं घेर सकते। (क्योंकि इसका महिमा बहुतही बडा है।)

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ९
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः १०
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद् वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद् दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ११
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै १२
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् १३
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः १४

---

९ अस्य इत् एव महित्वं दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात् परि प्र रिरिचे । स्वराट् दमे विश्वगूर्तः स्वरिः अमत्रः इन्द्रः रणाय आ ववक्षे ॥

१० इन्द्रः अस्य इत् एव शवसा शुषन्तं वृत्रं वज्रेण वि वृश्चत् । सचेताः श्रवः दावने, गाः न, व्राणाः अवनीः अभि अमुञ्चत् ॥

११ यत् सीं वज्रेण परि अयच्छत्, (ततः) सिन्धवः अस्य इत् उ त्वेषसा रन्त । ईशानकृत् तुर्वणिः दशस्यन् (इन्द्रः) तुर्वीतये गाधं कः ।

१२ तूतुजानः कियेधाः ईशानः अस्मै इत् उ वृत्राय वज्रं प्र भर । अपां चरध्यै अर्णांसि इष्यन् तिरश्चा, गोः न, पर्व वि रद ॥

१३ उक्थैः नव्यः अस्य इत् उ तुरस्य पूर्व्याणि कर्माणि प्र ब्रूहि । यत् युधे आयुधानि इष्णानः ऋघायमाणः शत्रून् नि ऋणाति ॥

१४ गिरयः च अस्य इत् उ भिया दृळ्हाः । (अस्य) जनुषः द्यावा भूम च तुजेते । नोधा वेनस्य ओणिं उप जोगुवानः सद्यः वीर्याय भुवत् ॥

९ इस (इन्द्र) काही महिमा द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसे बहुतही बडा है। स्वयंशासक, शत्रुदमनमें सब प्रकारके सामर्थ्योंसे युक्त, उत्तम प्रकारसे शत्रुसे लडनेवाला, अपने बलसे सुरक्षा करनेवाला इन्द्र युद्धके लिये सेनाको आगे बढाता है ॥

१० इन्द्रने इसी अपने बलसे शोषक वृत्रको वज्र-द्वारा काटा। सचेत इन्द्रने अन्नके दानमें प्रवृत्ति रखकर, गायके समान, रुके हुए नीचेकी ओर जानेवाले जलप्रवाहोंको खुला किया (बहा दिया) ॥

११ जिस कारण वज्रसे इन (जलों) को चारों ओर बहने दिया, उस कारण सब नदियाँ इसीके तेजसे चलने-बहने लगीं। स्वामित्व करनेवाले, त्वरासे लेने और दान करनेवाले इन्द्रने तुर्वीतिके लिये जलको थोडासा उथला कर दिया ॥

१२ शत्रुका नाश करनेवाले बलवान् स्वामी (इन्द्र) ने इसी वृत्रपर वज्र मारा। जलप्रवाहोंको बहानेके लिये जलोंको प्रेरित करके, गायके समान, तिरछी गतिसे वृत्रके टुकडे कर (दिये)।

१३ जो स्तोत्रोंद्वारा वर्णन किया जाता है, इसी शीघ्रतासे कार्य करनेवाले (इन्द्र) के प्राचीन कर्मोका वर्णन कर। जब यह युद्धके लिये शस्त्रोंको चलाता है, तब शत्रुवध करनेकी इच्छा करता हुआ, वह शत्रुओंके पास पहुंचता है।

१४ पर्वत इसीके भयसे सुदृढ बने हैं। इसके प्रकट होनेसे द्यावापृथिवी कांपती है। नोधा (ऋषि) इस प्रिय (इन्द्र) के दुःखनाशक गुणका वारंवार गान करता हुआ तत्कालही अपना पराक्रम (बढानेमें) समर्थ हुआ ॥

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः १५
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६

१५ इन्द्रः सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानं सुष्विं एतशं प्र आवत् । यत् भूरेः ईशानः एकः वव्ने, (तदा) अस्मै इत् उ एषां त्यत् अनु दायि ॥

१६ हे हारियोजन इन्द्र ! गोतमासः एव ते सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन् । एषु विश्वपेशसं धियं आ धाः । (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१५ इन्द्रने स्वश्वपुत्र सूर्यके साथ स्पर्धा करनेके समय सोमयाग करनेवाले एतशकी सुरक्षा की । जब अनंत धनोंका स्वामी इन्द्र प्रसन्न होता है, तब इसी इन्द्रके लिये ये स्तोत्र दिये जाते हैं, (गाये जाते हैं) ॥

१६ हे घोडोंके रथवाले इन्द्र ! गोतम गोत्रके लोगोंनेही तेरे ये उत्तम स्तोत्र किये हैं। इनमें अपनी सब प्रकारसे तेजस्वी बुद्धि रख (एकाग्रतासे श्रवण कर) । वह बुद्धिसे किये कर्मद्वारा धन प्राप्त करनेवाला इन्द्र सबेरे अतिशीघ्र हमारे पास आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें इन्द्रके वर्णनसे आदर्श वीरका वर्णन किया है, वह देखिये—

१. तवस्— शक्तिमान्, सामर्थ्यवान् ।

२. तुरः— त्वरासे कर्म करनेमें प्रवीण,

३. माहिनः— आनंदपूर्ण, हर्षयुक्त, नित्य उत्साही, बडा, महान्, आनन्द देनेवाला, राज्याधिकार, राजशक्ति, राज्यशासनमें समर्थ,

४. ऋचीषमः— (ऋचि-समः) विद्यामें निपुण,

५. अध्रिगुः— जिसकी गौ या संपत्ति कोई चुरा नहीं सकता, ऐसा सामर्थ्यवाला, (मं.१)

६. प्रत्नः— पुरातन (प्रथाको सुरक्षित रखनेवाला),

७. पतिः— रक्षक, अधिपति, (मं.२)

८. मंहिष्ठः— बडा, महान्, प्रशंसनीय दाता,

९. सूरिः— ज्ञानी, विद्वान्, भाष्यकार,

१०. उपमः— उपमा देनेयोग्य, उत्तम, सर्वोत्कृष्ट, सबसे श्रेष्ठ, (मं.३)

११. तत्सिनः— अन्नवान्

१२. गिर्वाहाः— प्रशंसनीय,

१३. मेधिरः— (मेधि-रः)— बुद्धि देनेवाला, ज्ञानदाता, (मं.४)

१४. वीरः— शूर, पराक्रमी

१५. दान-ओकाः— दान देनेका घर, दानका घर,

१६. पुरां दर्मा— शत्रुके कीलोंको तोडनेवाला,

१७. गूर्तश्रवाः— प्रशंसनीय यशवाला, (मं.५)

१८. कियेधाः— (कियत् धाः)— कितनी विलक्षण या विशेष धारण-शक्तिसे युक्त,

१९. ईशानः— स्वामी, राजा, अधिपति,

२०. तुजन्— शत्रुका नाश करनेवाला, वज्र, शस्त्र,

२१. मर्म विध्यन्— शत्रुके मर्मस्थानका वेध करनेवाला,

२२. स्वपस्तमः— (सु- अपः-तमः) उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण, (मं. ६)

२३. सहीयान्— शत्रुका पराभव करनेवाला,

२४. आद्रिं अस्ता— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला,

२५. विष्णुः— शत्रुकी सेनामें घुसकर उसका नाश करनेवाला वीर, (मं. ७)

२६. स्वराट्— अपना अधिकार चलानेवाला, स्वयं-शासक,

२७. वृमे विश्वगूर्तः— शत्रुदमनके कार्यमें सर्व-समर्थ,

२८. स्वरिः— उत्तम प्रकारसे शत्रुके साथ लडनेवाला,

२९. अमत्रः— (अम-त्रः)— अपने बलसे सुरक्षा करनेवाला, (मं.९)

३०. इन्द्रः शवसा वज्रेण शुष्मन्तं वृत्रं वि वृश्चत्- इन्द्रने अपने बलसे वज्रसे बलवान् वृत्रको काटा,

३१. सचेताः- बुद्धिमान्, उत्साही, दक्ष,

३२. श्रवः दावन्- अन्नका दान करनेवाला, (मं. १०)

३३. वज्रेण परि अयच्छत्- शत्रुको वज्रसे मारा,

३४. ईशान-कृत्- अधिपति, शासकका निर्माण करनेवाला,

३५. तुर्वणिः- शत्रुका त्वरासे नाश करनेवाला,

३६. दशस्यन्- दाता, शत्रुका संहारकर्ता, (मं. ११)

३७. तूतुजानः— शत्रुका नाश करनेवाला, (मं. १२)

३८. युधे आयुधानि इष्णानः शत्रून् निघ्नणाति- युद्धमें शत्रुपर शस्त्रास्त्र फेंकता है और शत्रुका नाश करता है। (मं. १३)

इस तरह आदर्शवीरका वर्णन इस सूक्तमें इन शब्दोंसे किया है। इन शब्दोंके वारंवार मनन करनेसे उत्कृष्ट आदर्श वीरका चित्र सामने आ जाता है। क्षत्रियोंमें ये गुण उत्कट रीतिसे रहने चाहिए।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके मंत्र १४में (नोधाः) पद है और मंत्र १६ में (गोतमासः) पद गोत्रनाम है। इसलिये इस सूक्तका ऋषि 'नोधा गौतमः' माना गया है। (गोतमासः ब्रह्माणि अक्रन्) गौतम गोत्रीय ऋषियोंने स्तोत्र किये। (नोधा येनस्य योषि जोगुवानः) नोधा ऋषि अपने प्रिय उपास्य देवकी रक्षाशक्तिका गुणगान करता है। इस तरह इस सूक्तमें वीरका वर्णन है।

(५) वीर इन्द्र

(ऋ० १।६२) नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय १
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् २
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत् सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद् गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ३

अन्वयः-१ (वयं) अङ्गिरस्वत् शवसानाय शूषं आङ्गूषं प्र मन्महे। स्तुवते ऋग्मियाय नरे विश्रुताय सुवृक्तिभिः अर्कं अर्चाम ॥

२ नः पूर्वे पदज्ञाः अङ्गिरसः येन अर्चन्तः गाः अविन्दन्, (हे स्तोतारः !) वः महे शवसानाय (तत्) महि नमः आङ्गूष्यं साम प्र भरध्वम् ॥

३ सरमा इन्द्रस्य अङ्गिरसां च इष्टौ तनयाय धासिं विदत्। बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्, गाः विदत् । नरः उस्रियाभिः सं वावशन्त ॥

अर्थ-१ (हम) अङ्गिरा गोत्रमें उत्पन्न लोगोंके समानही बलवान् और प्रशंसनीय इन्द्रके लिये सुखकारक साम गाते हैं। स्तुत्य वर्णनीय नेता सुप्रसिद्ध इन्द्रकी स्तोत्रोंद्वारा हम पूजा करते हैं ॥

२ हमारे पूर्वज मार्ग जाननेवाले आंगिरस् गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंने जिस (साम)से (इन्द्रकी) पूजा की और गौएं प्राप्त कीं, तुम भी बडे बलवान् इन्द्रके लिये वही आंगूष्य साम बडी नम्रताके भावसे गाओ (आलापोंसे भर दो)॥

३ सरमाने इन्द्रकी और आंगिरसोंकी इष्टीमें अपने पुत्रके लिये अन्न प्राप्त किया। बृहस्पतिने पर्वत (पर रहकर लडनेवाले) शत्रुको नष्ट किया और उससे गौवें प्राप्त कीं । नेताओंने उन गौओंके साथ रहकर बहुत जयजयकार किया।

*

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ४
गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ५
तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन् मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ६
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद् रोदसी सुदंसाः ७
सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ८
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु ९

४ हे शक्र इन्द्र ! सः सः सुष्टुभा स्तुभा स्वरेण स्वर्यैः सरण्युभिः नवग्वैः दशग्वैः सप्त विप्रैः रवेण अद्रिं फलिगं बलं दरयः ॥

५ हे दस्म इन्द्र ! अङ्गिरोभिः गृणानः उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः । भूम्याः सानु वि अप्रथयः । दिवः रजः उपरं अस्तभायः ॥

६ यत् उपह्वरे उपराः मधु-अर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वत् । तत् उ अस्य प्रयक्षतमं कर्म । दस्मस्य चारुतमं दंसः अस्ति ॥

७ अयास्यः स्तवमानेभिः अर्कैः सनजा सनीडे द्विता वि वव्रे । सुदंसाः भगः न, परमे व्योमन् मेने रोदसी अधारयत् ॥

८ विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिः एवैः दिवं भूम सनात् परि (चरतः) । अक्ता कृष्णेभिः उषाः रुशद्भिः वपुभिः अन्या अन्या आ चरतः ॥

९ सुदंसाः शवसा सूनुः स्वपस्यमानः सनेमि सख्यं दाधार । आमासु चित् अन्तः पक्वं (पयः) दधिषे । कृष्णासु रोहिणीषु रुशत् पयः (दधिषे) ॥

४ हे समर्थ इन्द्र ! वह तू उत्तम स्तुति और काव्यके स्वरसे गाये जानेपर प्रशंसित हुआ । उस तेजस्वी (इन्द्रने) प्रगतिशील नवग्व और दशग्व सात विप्रोंद्वारा गाये गये स्वरके साथ पर्वत-पर रहनेवाले जलको रोकनेवाले बलको छिन्न भिन्न कर दिया ॥

५ हे दर्शनीय इन्द्र ! तूने अङ्गिरा लोगोंसे प्रशंसित होकर उषा और सूर्यके साथ और किरणोंसे अन्धकारको दूर किया । भूमिके उच्च भागको विशेष फैला था, (खुला किया) और द्युलोक और अन्तरिक्षको ऊपर सुदृढ किया ॥

६ (इन्द्रने) जो उतराईसे चलनेवाली मीठे जलकी चार नदियाँ पुष्ट कीं, (बहा दीं) वह इसका अत्यन्त पूज्य कर्म है । वह इस दर्शनीय इन्द्रका अत्यन्त सुन्दर कर्म है ॥

७ न थकनेवाले (इन्द्र) ने गाये जानेवाले स्तोत्रोंके साथ सदा एकत्र रहनेवालों तथा एक घरमें रहनेवालोंको दो प्रकार विभक्त किया । उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रने, धनके समान, बडे आकाशमें सन्मान्य द्यावा-पृथिवीको धारण किया ॥

८ भिन्न रूपवाली पुनःपुनः उत्पन्न होनेवाली (रात्री और दिनप्रभाएं) दो स्त्रियां अपनी गतिसे द्यु और भूलोकोंपर अनादि-कालसे घूम रही हैं । उनमेंसे रात्री काले और उषा चमकीले शरीरोंसे एक दूसरेके पीछे चलती हैं ॥

९ उत्तम कर्म करनेवाले बलके साथ उत्पन्न हुए इन्द्रने, शुभ कर्मकी इच्छा करते हुए, सनातन मित्रताका धारण किया । इन्द्रने छोटी आयुवाली (गायों) में भी पक्व दूध धारण किया है, और काली तथा लाल रंगवाली गौओंमें भी उज्वल श्वेत दूध रखा है॥

सनात् सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् १०
सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन् मनीषाः ११
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः १२
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १३

१० सनीळाः अवाताः अमृताः पत्नीः अवनीः सहोभिः जनयः न, सनात् (इन्द्रस्य) पुरु सहस्रा व्रताः रक्षन्ते। स्वसारः अह्रयाणं दुवस्यन्ति ॥

११ हे दस्म! (त्वं) अर्कैः नव्यः। सनायुवः वसूयवः मतयः नमसा (त्वा) दद्रुः। हे शवसावन्! मनीषाः, उशतीः पत्नीः उशन्तं पतिं न, त्वा स्पृशन्ति ॥

१२ हे दस्म! गभस्तौ तव रायः सनात् एव, न क्षीयन्ते, न उपदस्यन्ति। हे इन्द्र! (त्वं) धीरः द्युमान् क्रतुमान् असि। हे शचीवः! तव शचीभिः नः शिक्ष ॥

१३ हे शवसान इन्द्र! नोधाः गोतमः सनायते, हरियोजनाय सुनीथाय नः नव्यं ब्रह्म अतक्षत्। (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

१० एक घरमें रहनेवाली चञ्चलतारहित अमर धर्मवाली पत्नियाँ, परंपरासंरक्षक स्त्रियोंके समान, सदाही इन्द्रके अनेक सहस्रों कर्मोंकी सुरक्षा करते हैं। ये बहिनें अकुटिल इन्द्रकी सेवा करती हैं।

११ हे दर्शनीय इन्द्र! तू स्तोत्रोंद्वारा स्तुति करनेयोग्य है। सनातन कालसे धनकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् स्तोतागण नम्रभावसे तेरे पास पहुंचते हैं। हे बलवान् इन्द्र! हमारे मनसे की हुई प्रशंसाएँ, प्यारी पत्नियाँ प्यार करनेवाले पतिके पास जैसी जाती हैं, वैसी तुझारे पास पहुंचें ॥

१२ हे दर्शनीय इन्द्र! तेरे हाथमें तेरे धन सदा रहते हैं। तेरे धन कभी क्षीण नहीं होते। न नष्ट होते हैं। हे इन्द्र! तू धैर्यवान् बुद्धिमान् है। हे बुद्धिमान्, तू अपनी बुद्धियोंसे हमें उत्तम शिक्षा दे ॥

१३ हे बलवान् इन्द्र! नोधा गोतमपुत्रने सत्यसनातन घोडे जोते रथमें बैठनेवाले उत्तम नेता इन्द्रके लिये हमारा यह नया स्तोत्र बनाया है। वह बुद्धिसे धनकी प्राप्ति करानेवाला इन्द्र सबेरे शीघ्रही हमारे यज्ञमें आ जावे ॥

आदर्श वीर

इस सूक्तमें भी आदर्श वीरका वर्णन है, निम्नलिखित गुण आदर्श वीरका वर्णन कर रहे हैं —

१. **शवसानः**– बलवान्, सामर्थ्यवान्,
२. **ऋग्मियः**– विद्वान्, बहुश्रुत, श्रुतिवान्,
३. **नरः** (नृ, ना)– नेता, अगुआ, संचालक,
४. **विश्रुतः**– प्रख्यात,
५. **अर्कः**– पूज्य, (मं. १)
६. **बृहस्पतिः**– अत्यंत ज्ञानी, विशेष प्रबुद्ध, (मं. ३)
७. **शक्रः**– समर्थ, प्रबल, बलिष्ठ, (मं. ४)
८. **दस्मः**— दर्शनीय, शत्रुका पूर्ण नाश करनेवाला (५)
९. **अ-यास्यः**– न थकनेवाला, प्रयास जिसको प्रतीतही नहीं होते,
१०. **सुदंसाः**– उत्तम कर्म कुशलतासे करनेवाला, शत्रुका नाश पूर्णतया करनेवाला, (मं. ७)
११. **स्वपस्यमानः** (सु-अपस्यमानः)– उत्तम कर्म करनेवाला, (मं. ९)
१२. **तव रायः गभस्तौ**— तेरा धन हाथमें रखा है,
१३. **न क्षीयते, न उपदस्यति**— वह नाश नहीं होता, कम भी नहीं होता,

१४. **शचीवान्**— शक्तिमान्, बुद्धिमान्, मतिमान् (१२)

१५. **धीरः द्युमान् क्रतुमान् असि**— धीर, तेजस्वी, पुरुषार्थी है।

१६. **शचीभिः शिक्ष**— अपनी बुद्धियोंसे पढाओ। (१२

१७. **सुनीथः**— उत्तम प्रकारसे चलानेवाला, (मं. १३)

ये पद आदर्श-वीरके गुण बता रहे हैं। पाठक इनका मनन करें।

आदर्श स्त्री

इस सूक्तमें आदर्श स्त्रीका वर्णन देखनेयोग्य है। निम्नलिखित पद आदर्श स्त्रीके गुणोंका वर्णन कर रहे हैं-

१. **विरूपाः**- विशेष रूपवाली,

२. **पुनर्भूः**- पुनः पुनः अपनी सजावट करके नयीसी बनने-वाली, वारंवार अपनी सजावट करनेमें दक्ष। [सूचना— '**पुनर्भूः**' पद लौकिक संस्कृतमें विधवा, मृतभर्तृकाका तथा पुनः विवाहित हुई स्त्री-पुनर्विवाहित स्त्रीका वाचक है। परंतु यहां यह अर्थ नहीं हैं। यहां दिनप्रभा उषा और रात्री ये दो स्त्रियाँ पुनः पुनः सजकर आती हैं और इस वर्णनमें यहां यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।]

३. **युवती**- तरुण स्त्री,

४. **एवः**- चलनेका सुंदर ढंग

५. **एवैः सनात् परि (चरति)**- अपने चलनेके अपूर्व ढंगसे चलती है।

६. **कृष्णेभिः रुशद्भिः वपुभिः आचरति**- काले रंगकी और चमकीले रंगकी साडियां अपने शरीरपर पहनकर चलती है।

७. **अन्या अन्या**- दूसरी दूसरी सी बनकर, अपनी सजावटके ढंगसे विलक्षण शोभावाली बन कर जाती आती है, (मं. ८)

८. **सनीळा**- समान रीतिसे घरमें रहनेवाली,

९. **अ-वाता**- जो चञ्चल नहीं है, स्त्रियोंमें चञ्चलता यह दोष है अतः जिनमें वह दोष नहीं है, शान्त चित्त,

१०. **अ-मृता**- मुरदा जैसी जो नहीं है, पूर्ण जीवित, पूर्ण उत्साही, दक्ष,

११. **पत्नी**- घरका, कुटुंबका उचित पालन-पोषण करनेवाली,

१२. **अवनी**- सुरक्षा करनेवाली, घरबारकी रक्षा दक्षतासे करनेवाली,

१३. **सहोभिः (युक्ता)**— अनेक बलोंसे युक्त,

१४. **जनिः**- उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली,

१५. **सहस्रा व्रता रक्षन्ते**- सैकडों सहस्रों व्रतोंकी सुरक्षा करते हैं।

१६. **स्वसा**— बहिनके समान (अन्य पुरुषके साथ) रहनेवाली, (मं. १०)

१७. **मनीषा**— बुद्धिमती,

१८. **उशती**— पतिका हित करनेकी इच्छावाली (मं ११)

गृहस्थकी गृहिणी किन गुणोंसे युक्त होनी चाहिये इसका यह वर्णन है। वेदमें स्त्रियोंके वर्णन बहुतही थोडे हैं, इसलिये पाठकोंको इन पदोंका विशेष मननपूर्वक अभ्यास करना उचित है।

यहां यह स्त्रीका वर्णन नहीं है, पर उषा, और रात्री ये दो स्त्रियाँ हैं ऐसा मानकर उनके मिषसे यहां उत्तम गृहिणीका वर्णन किया है, जो अत्यंत मननके योग्य है।

ऋषिका नाम

इस सूक्तके १३ वें मंत्रमें '**नोधा गौतमः**' ये पद हैं वे इस सूक्तके ऋषिके वाचक हैं। '**नोधा गोतमः नव्यं ब्रह्म अतक्षत**'= गोतमपुत्र नोधा ऋषिने यह नया सूक्त बनाया ऐसा यहां कहा है। अतः यह वर्णन ऋषिदर्शक है।

'**नवग्व, दशग्व**' (मं.४)- नौ गौवें अपने पास रखनेवाले, दस गौवें अपने पास रखनेवाले। नौ मास या दस मासतक यज्ञ करनेवाले। 'अङ्गिरस्' ऋषिका नाम इस सूक्तमें चार बार आया है। यह ऋषि नोधाके पूर्व समयका प्रतीत होता है।

दृश्यका वर्णन

१. **उषसा सूर्येण गोभिः अन्धः वि वः, भूम्याः सानु वि अप्रथयः**—उषःकालके बाद सूर्य-उदय हुआ, सूर्य-किरणोंसे अन्धकार दूर हुआ और भूमिपर जो ऊंचे स्थान थे वे प्रकाशित हुए। यह सूर्योदयके दृश्यका मनोहर वर्णन है।

१. उपह्वरे उपराः मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वत्, तत् अस्य प्रयक्षतमं कर्म, चारुतमं दंसः अस्ति— पर्वतकी उतराईपरसे नीचे बहनेवाली मीठे जलकी चार नदियाँ महापूरसे भरी हुई बह रही हैं, यही इंध इन्द्रका वर्णनीय कर्म और अत्यंत सुंदर कर्म है।

ये इसके काव्यमय वर्णन हैं। ये काव्यमाधुरीकी दृष्टिसे बडेही उत्तम वर्णन हैं। अन्य उपदेश मंत्रोंमें है, जो मनन करनेसे अधिक बोधक हो सकता है।

(६) प्रबल वीर

(ऋ० १।६३) नोधा गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् १
आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात्।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान् पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः २
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान् त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ३
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ४

अन्वयः— १ हे इन्द्र! त्वं महान् (असि), यः ह जज्ञानः शुष्मैः द्यावापृथिवी अमे धाः। यत् ह ते भिया विश्वा अभ्वा दृळ्हासः गिरयः चित् किरणाः न ऐजन्॥

२ हे इन्द्र! यत् विव्रता हरी आ वेः, (तदा) जरिता ते बाह्वोः वज्रं आ धात्। हे अविहर्यतक्रतो पुरुहूत! येन अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि॥

३ हे इन्द्र! (त्वं) सत्यः, एतान् धृष्णुः। त्वं ऋभुक्षाः। नर्यः त्वं षाट्। त्वं वृजने पृक्षे आणौ द्युमते यूने कुत्साय सचा शुष्णं अहन्॥

४ हे वृषकर्मन् वज्रिन् शूर वृषमनः इन्द्र! यत् ह वृथाषाट् योनौ दस्यून् पराचैः वि अकृतः यत् वृत्रं उभ्नाः,(तदा) सखा त्वं ह त्यत् चोदीः॥

अर्थ— १ हे इन्द्र! तू महान् है, जिसने प्रकट होतेही अपने बलोंसे द्यावापृथिवीको शक्तिमें धारण किया। तब तेरे भयसे सब बडे सुदृढ पर्वत भी, किरणोंके समान, कांपने लगे थे॥

२ हे इन्द्र! जब (तूने) विविध कर्म करनेवाले घोडोंको चलाया, (तब) स्तोताने तेरे दोनों हाथोंमें वज्र रखा, (तुझसे ग्रहण कराया)। हे निष्प्रतिबंधतासे कर्म करनेवाले बहु प्रशंसित (इन्द्र)! जिससे तूने शत्रुओंको और उनके प्राचीन नगरोंको— या कीलोंको— गिरा दिया, (तोड दिया या उनपर हमला किया)॥

३ हे इन्द्र! तू सत्य है। तू इन शत्रुओंका नाशकर्ता है। तूं कारीगरोंको बसानेवाला है। तूं जनताका हितकारी और शत्रुका पराभव करनेवाला है। तूने युद्धके समय अन्नदानके समय तथा शस्त्रोंके युद्धमें, तेजस्वी जवान कुत्सके हित करनेके लिये उसके साथ रहकर शुष्णका वध किया॥

४ हे बलके कर्म करनेवाले वज्रधारी शूर बलिष्ठ मनवाले इन्द्र! जब सहजहीसे शत्रुका नाश करनेवाले तूने युद्ध-स्थानमें शत्रुओंको पीछे हटाकर काट डाला, और वृत्रको मारा, तब मित्र बनकर तूनेही स्तोताको वह (यथेष्ट धन) दिया॥

त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन् दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्यऽस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ५
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ६
त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिवः पूरवे कः ७
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ८
अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ९

५ हे इन्द्र ! त्वं ह मर्तानां त्यत् दृळस्य चित् अजुष्टौ अरिषण्यन्, अस्मत् अर्वते काष्ठाः आ वि वः । हे वज्रिन् ! घना इव, अमित्रान् श्नथिहि ॥

६ हे इन्द्र ! नरः अर्णसातौ स्वर्मीळे आजा त्यत् त्वां ह हवन्ते । हे स्वधावः ! समर्ये वाजेषु तव इयं ऊतिः अतसाय्या भूत् ॥

७ हे वज्रिन् इन्द्र ! युध्यन् त्वं ह त्यत् सप्त पुरः पुरुकुत्साय दर्दः । हे राजन् ! यत् सुदासे बर्हिः न वृथा वर्क (तदा) अंहोः वरिवः पूरवे कः ॥

८ हे देव इन्द्र ! त्वं नः त्यां चित्रां इषं, आपः न, परिज्मन् पीपयः, हे शूर ! यया विश्वध क्षरध्यै, अस्मभ्यं, ऊर्जं न, त्मनं प्रति यंसि ॥

९ हे इन्द्र ! गोतमेभिः ते (स्तोत्रं) अकारि । (तव) हरिभ्यां नमसा ब्रह्माणि आ उक्ता । (त्वं) नः सुपेशसं वाजं आभर । (सः) धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

५ हे इन्द्र ! तूही मनुष्योंकी उस सुदृढ शत्रुकी असेवाके कारण उसका नाश करता हुआ, -हमारे घोडेके लिये सब दिशाएँ खुली कर दीं- मार्ग खुला कर दिया। हे वज्रधारी इन्द्र ! तू वज्रके समान, शत्रुओंका नाश कर ॥

६ हे इन्द्र ! नेता लोग सोमरसपानके समय अथवा आत्मबलके बढानेके समय, आवश्यक हुए युद्धमें उस तुझकोही सब बुलाते हैं । हे अपनी शक्तिके धारक ! मनुष्यों और घोडोंसे होनेवाले युद्धोंमें तेरी यह सुरक्षा प्राप्त करनेयोग्य है ॥

७ हे वज्रधारी इन्द्र ! शत्रुओंसे लडनेके समय तूनेही उन शत्रुओंकी वे सात पुरियाँ पुरु कुत्सकी सुरक्षाके लिये तोड दीं। हे राजन् ! जब सुदासके हित करनेके लिये शत्रुओंको, दर्भोंके समान, सहजहीसे काट दिया, तब अंहुका-पापी शत्रुका-धन नागरिकोंके हितके लिये किया, दिया ॥

८ हे देव इन्द्र ! तूने हमारे ऊपर उस श्रेष्ठ अन्नकी, जलके समान, चारों ओरसे ऐसी वृष्टी की, हे शूर ! कि जो सब ओरसे बढने लगी, हमारे लिये, बल प्राप्त होनेके समान, आत्मिक उत्साह भी प्राप्त हुआ ॥

९ हे इन्द्र ! गोतम-वंशियोंने तेरे काव्य किये हैं। तेरे घोडोंके लिये अन्नदानके साथ जल (या स्तोत्र) भी कहा (दिया)। तू हमारे लिये सुन्दर रूपवाला बल भर दे, (बढा दे)। वह बुद्धिसे धन देनेवाला इन्द्र प्रातःसमय शीघ्र ही हमारे पास आ जाय ॥

अतुल प्रतापी वीर

अतुलनीय प्रतापवाले वीरका वर्णन इस सूक्तमें है। यह वर्णन इन्द्रका है, इस वर्णनके मिषसे बडे वीरका गुण-वर्णन किया है—

१. त्वं महान्- तू बडा है,

२. अजानः शुष्मैः अमे धाः- प्रकट होतेही अपने बलोंसे सर्वत्र शक्तिका प्रभाव जमा दिया,

३. ते भिया विश्वा दृढासः ऐजन्- तुझ प्रबल वीरके

भयसे सभी सुदृढ शत्रु कांप उठे। (मं. १)

४. विव्रता हरी आ वेः- विशेष कर्म करनेवाले घोडे युद्धके लिये खुले हुए हैं,

५. ते बाह्वोः वज्रं आधात्- तेरे बाहुओंपर वज्र रखा गया, तूने अपने हाथोंसे वज्र पकडा,

६. अ-वि-हर्यत-क्रतुः- जिसके पुरुषार्थके कर्म प्रतिबंध न होते हुए वेगसे चलते रहते हैं,

७. पुरुहूतः- बहुत लोग जिसको अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं,

८. अभिष्टान् पूर्वीः पुरः इष्णासि- शत्रुओंको और उनके प्राचीन कीलोंको तोड देता है, नष्टभ्रष्ट कर देता है। (मं. २)

९. सत्यः- सत्यका पालनकर्ता,

१०. एतान् धृष्णुहि- इन सब शत्रुओंको परास्त कर,

११. त्वं ऋभु-क्षाः- तुम कारीगरोंको अपने राज्यमें बसा दो, बढाओ,

१२. नर्यः- मनुष्योंका, जनताका हित कर,

१३. त्वं षाट्- तू शत्रुका पराभव कर,

१४. वृजने पृक्षे आणौ द्युमते सचा शुष्णं अहत्- युद्धमें, अन्नकी स्पर्धामें, शस्त्रकी लडाईमें तेजस्वी वीरके साथ रहकर प्रबल शोषक शत्रुका वेध कर, (मं ३)

१५. वृषकर्मा— बलके साथ वीरताके कर्म करनेवाला,

१६. वृषमनः— जिसका मन बलशाली है,

१७. वज्रिन् शूर- वज्रधारी शूर वीर

१८. वृथाषाद् योनौ दस्यून् पराचैः वि अकृत— सहजहीसे शत्रुका पराभव करनेवाला वीर युद्धभूमिमें शत्रुओंको नीचे गिराकर काट देवे,

१९. वृत्रं उग्राः— घेरनेवाले शत्रुका पूर्णरूपसे नाश कर,

२०. सखा त्वं त्यत् चोदीः— तू मित्र बनकर अपने वीरोंको प्रेरित कर। (मं.४)

२१. त्वं मर्तानां दृढस्य अजुष्टौ अरिषण्यन्— तू मानवोंके हित करनेके लिये उनके सुदृढ शत्रुका नाश करता है,

२२. अस्मत् अर्वते काष्ठाः आविवः— हमारे घोडोंके लिये सब दिशाएं खुली कीं, हमारे घोडेकी गति सर्वत्र होनेयोग्य मार्ग खोल दिये गये,

२३. अमित्रान् श्नथिहि- शत्रुओंका नाश कर। (मं.५)

२४. नरः आजा त्वां हवन्ते- नेता लोग युद्धमें तुम्हें बुलाते हैं।

२५. समर्ये वाजेषु तव ऊतिः अतसाय्या भूत्- युद्धमें और स्पर्धाओंमें तेरी सुरक्षा शस्त्र जैसी सहाय्यक हुई है। (मं.६)

२६. युध्यन् त्वं सप्त पुरः दर्दः- लडते हुए तूने शत्रुके सात कीले तोड दिये।

२७. वृथा पर्क, अंहोः वरिवः पूरवे कः— जब तूने सहजहीसे शत्रुका निःपात किया, तब पापी शत्रुका धन नगरवासियोंके हितके लिये दिया। (मं.७)

२८. नः सुपेशसं वाजं आभर— हमें सुन्दर बल दे।

ये वचन अतुल प्रतापी वीरके शुभ गुणोंका वर्णन कर रहे हैं। जो वीर इन गुणोंसे युक्त होगा वह निःसंदेह जनतामें पूजनीय बनेगा।

(अष्टम मण्डल)

(७) वीर भाव

(ऋ० ८।८८; (प्रथमौ द्वौ मंत्रौ) अथर्व २०।९।१-२; २०।४९।४-५) नोधा गौतमः। इन्द्रः।
प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे १

अन्वयः— १ वः तं दस्म, ऋतीषहं, वसोः अन्धसः मन्दानं इन्द्रं, धेनवः स्वसरेषु वत्सं न, गीर्भिः अभि नवामहे ॥

अर्थ— १ तुम्हारे उस सुन्दर दर्शनीय, शत्रुके आक्रमणका प्रतिकार करनेवाले, सबके निवासक सोमरससे आनन्दित होनेवाले इन्द्रकी, गायें गोशालामें बछडेको चाहती हैं वैसे प्रेमसे, अपनी वाणीद्वारा हम स्तुति करते हैं॥

द्युक्षं सुदानं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे २
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ३
योद्धासि क्रत्वा शवसोत दंसना विश्वा जाताभि मज्मना ।
आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ४
प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ५
नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्दाशुषे दशस्यसि ।
अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ६

२ द्युक्षं, सुदानुं, तविषीभिः आवृतं, गिरिं न, पुरुभोजसं, क्षुमन्तं, गोमन्तं शतिनं सहस्रिणं वाजं मक्षु ईमहे ॥

३ हे इन्द्र ! यत् मावते स्तुवते वसु दित्ससि, बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते । ते तत् नकिः आ मिनाति ॥

४ क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि । मज्मना विश्वा जाता अभि (भवसि) । गोतमाः यं अजीजनन्, अयं अर्कः त्वा ऊतये आ ववर्तति ॥

५ हे इन्द्र ! (त्वं) ओजसा दिवः परि अन्तेभ्यः प्र रिरिक्षे हि । पार्थिवं रजः त्वा न विव्याच । (त्वं) स्वधां अनु ववक्षिथ ॥

६ हे मघवन् ! यत् दाशुषे दशस्यसि, ते मघस्य परिष्टिः नकिः । चोदिता मंहिष्ठः वाजसातये अस्माकं उचथस्य बोधि ॥

२ हम द्युलोकमें निवास करनेवाले, दान देनेवाले, अनेक शक्तियोंसे युक्त, पर्वतके समान, बहुतोंको भोजन देनेवाले, स्वयं अन्नरूप, गौओंके (दूधके) साथ मिले सैकडों और सहस्रोंको बल देनेवाले (सोमको) शीघ्रही चाहते हैं ॥

३ हे इन्द्र ! जब मेरे सदृश भक्तको तू धन देना चाहता है, तब बडे सुदृढ पर्वत भी तुझे नहीं रोक सकते । तेरे उस कर्मको कोई नहीं तोड सकता ॥

४ तू अपनी बुद्धि, बल और कर्मसे योद्धा है। तू अपने बलसे सब उत्पन्न पदार्थोंको घेरता है । गोतम गोत्रके लोगोंने जिसको बनाया, वह यह स्तोत्र तुझे सुरक्षाके लिये हमारी ओर आनेको (प्रवृत्त) करता है ॥

५ हे इन्द्र ! तू अपने बलसे द्युलोकके परले अन्तोंसे भी बहुतही बडा है। पृथ्वी और अन्तरिक्ष भी तुझे ढांक नहीं सकते, (तुमने हमारा दिया शरीर) धारक अन्न (देवोंको) दिया है ॥

६ हे धनसंपन्न इन्द्र । जो धन तू दाताको देना चाहता है उसकी मर्यादा नहीं है । (सबका) प्रेरक और (सबसे) बडा तू अन्नदानके समय हमारे स्तोत्रकी ओर ध्यान दे (श्रवण कर)॥

वीरताके गुण

इस सूक्तमें वीरताके साथ रहनेवाले निम्नलिखित गुण वर्णन किये गये हैं—

१. ऋतीषाह्— (ऋति-षाट्)- ' ऋति ' का अर्थ है= सेना, गति, शत्रुका हमला, शत्रुका आक्रमण, गाली, दुःख, आपत्ति, कष्ट । इनका प्रतिकार करना वीरका कर्तव्य है अतः उसको ' ऋति-षाट् ' कहते हैं (मं. १)

२ बृहन्तः वीडवः अद्रयः त्वा न वरन्ते— बडे स्थायी प्रबल पर्वत अथवा शत्रु तुझे नहीं रोक सकते ।

३. ते तत् नकिः आ मिनाति— तेरे शुभकर्मको कोई भी तोड नहीं सकता । तेरी योजना बीचहीमें कभी असफल नहीं होती । (मं. ३)

४. क्रत्वा शवसा उत दंसना योद्धा असि— पुरुषार्थ, बल और शत्रुनाशक सामर्थ्यकी दृष्टिसे तू निःसंदेह

योद्धावीर है।

५. मज्मना विश्वा जाता अभि भवसि- अपने महत्त्वसे सब उत्पन्न हुई आपत्तियोंको दूर करता है, सब शत्रुओंको परास्त करता है।

६. ऊतये त्वा आ ववर्तति— अपनी सुरक्षाके लिये सब तुझे बुलाते हैं। (मं. ४)

७. ओजसा (त्वं) प्र रिरिक्षे, त्वा न विव्याच- अपने बलसे तू सबसे बढकर श्रेष्ठ है, तेरेसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। (मं.५)

८. ते मघस्य परिष्टिः नकिः— तेरे धनकी कोई सीमा नहीं है, तेरे सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं है।

इस सूक्तके ये गुण अन्य इन्द्र सूक्तोंके वर्णनोंके साथ देखने योग्य हैं। इन्द्र सूक्त जिस क्षात्रविद्याका उपदेश करते हैं वह विद्या यही है। ये गुण जो लोग अपनेमें बढा लेंगे वेही वीर बनकर दिग्विजयी होंगे।

(८) वीर काव्य

(ऋ० १।६४) नोधा गौतमः। मरुतः। जगती, १५ त्रिष्टुप्।

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः १
ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः २
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव।
दृळ्हा चिद् विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ३

अन्वयः— १ हे नोधः! वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय मरुद्भ्यः सुवृक्तिं प्र भर। धीरः सुहस्त्यः मनसा, विदथेषु आभुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे॥

२ ते ऋष्वासः उक्षणः असुराः अरेपसः, सूर्या इव शुचयः द्रप्सिनः न घोरवर्पसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे॥

३ युवानः अजराः अभोग्घनः अध्रिगावः पर्वता इव रुद्राः ववक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दृळ्हा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति॥

*

अर्थ— १ हे नोधा नामक ऋषि! बल पानेके लिये, उत्तम यज्ञ करनेके लिये, ज्ञानी बननेके लिये, सांघिक बलके लिये, मरुतोंके उत्तम काव्य निर्माण कर। बुद्धिमान् और हाथका कुशल मैं मनसे (उनकी भक्ति करता हूँ और) युद्धोंमें प्रभावयुक्त भाषण, जल प्रवाहके समान, (धारा प्रवाह) करता हूं॥

२ वे ऊँचे बडे (अपने) जीवनका अर्पण करनेवाले पापरहित और पवित्रता करनेवाले, सूर्य (किरणोंके) समान शुद्धता करनेवाले (द्रप्सिनः) रसपान करनेवाले सामर्थ्ययुक्त वीरोंके समान बडे शरीरवाले, मानो रुद्रके मरनेके लिये सिद्ध हुए ये वीर स्वर्गसेही प्रकट हुए हैं॥

३ युवा जरारहित, कृपणोंको दूर करनेवाले, आगे बढनेवाले, पर्वतोंके समान अपने स्थानमें स्थिर रहनेवाले, शत्रुको हलानेवाले ये वीर (जनताको सहायता) पहुंचाते हैं। ये वीर पृथ्वीपर रहनेवाले, द्युलोकमें और अन्य सब भुवनोंमें रहनेवाले सभी सुदृढ शत्रुओंको अपने बलसे उखाड देते हैं॥

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ४
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ५
पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ६
महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ७
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ८

४ वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः वि अञ्जते, वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधि येतिरे, एषां अंसेषु ऋष्टयः नि मिमृक्षुः, नरः दिवः स्वधया साकं जज्ञिरे ॥

५ ईशानकृतः धुनयः रिशादसः तविषीभिः वातान् विद्युतः अक्रत, परिज्रयः धूतयः दिव्यानि ऊधः दुहन्ति, भूमिं पयसा पिन्वन्ति ॥

६ सुदानवः आभुवः मरुतः विदथेषु घृतवत् पयः अपः पिन्वन्ति, अत्यं न वाजिनं मिहे वि नयन्ति, स्तनयन्तं उत्सं अक्षितं दुहन्ति ॥

७ महिषासः मायिनः चित्रभानवः गिरयः न, स्वतवसः रघुष्यदः हस्तिनः मृगा इव, वना खादथ, यत् आरुणीषु तविषीः अयुग्ध्वम् ॥

८ प्रचेतसः सिंहा इव नानदति, पिशा इव सुपिशः विश्ववेदसः क्षपः जिन्वन्तः शवसा अहिमन्यवः पृषतीभिः ऋष्टिभिः सबाधः सं इत् ॥

४ शरीरकी सुन्दरता बढानेके लिये भान्ति भान्तिके आभूषणोंसे (अपने शरीर) सजाते हैं। छातियोंपर शोभा बढानेके लिये सुवर्णके हारोंको धारण करते हैं। इनके कन्धोंपर भाले चमकते हैं। ये नेता वीर द्युलोकसे अपने धारक बलके साथ प्रकट हुए हैं॥

५ राजाके निर्माणकर्ता, शत्रुको हिलानेवाले, शत्रुका पूर्ण नाश करनेवाले अपनी शक्तियोंसे वायु और बिजलियोंको निर्माण करते हैं (प्रचण्ड हलचल मचाते हैं।) चारों ओर वेगपूर्वक चढाई करनेवाले, शत्रुको उखाडनेवाले दिव्य (मेघ) स्तनोंका दोहन करते हैं और पृथ्वीको दूध (या जल) से भरपूर करते हैं ॥

६ अच्छे दानी प्रभावशाली मरुद्वीर युद्धस्थलोंमें घीके साथ दूध तथा जलको भरपूर रखते हैं। घोडेके समान बलयुक्त मेघको वर्षाके लिये विशेष ढंगसे घुमाते हैं, पश्चात् गर्जनेवाले झरनेरूप मेघसे अक्षय जलका दोहन करते हैं ॥

७ भैंसे जैसे बलवान् निपुण कारीगर अतितेजस्वी पर्वतोंके समान अपने बलसे अपने स्थानमें स्थिर रहनेवाले, (परंतु समयपर) शीघ्र दौडनेवाले (हे वीरों तुम) हाथियों और मृगोंके समान, वनोंको भी खा जाते हो, (वनोंको भी तोड देते हो), तुम तो लाल रंगकी घोडियोंमेंसे केवल बलवाली घोडियोंकोही (अपने रथोंके साथ) जोत देते हो ॥

८ उत्कृष्ट ज्ञानी वीर, सिंहोंके समान गर्जना करते हैं। आभूषण धारण करनेवालोंके समान, सुन्दर भूषण धारण करनेवाले, सब धनों और ज्ञानोंसे युक्त होकर शत्रुदलको भगा देनेवाले, (जनताको) संतुष्ट करनेवाले, बलशाली होनेके कारण सदा उत्साही वीर धब्बोंवाली घोडियोंके साथ और हथियारोंके साथ पीडित (जनोंकी सुरक्षा करनेके लिये) त्वरासे इकट्ठे होते हैं ॥

रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ९
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः १०
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ११
घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये १२
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति १३

---

९ हे गणश्रियः नृषाचः शूराः शवसा अहिमन्यवः मरुतः! रोदसी आ वदत। वन्धुरेषु रथेषु, अमतिः न, दर्शता विद्युत् न, वः आ तस्थौ ॥

१० रयिभिः विश्ववेदसः समोकसः तविषीभिः संमिश्लासः विरप्शिनः अस्तारः अनन्तशुष्माः वृषखादयः नरः गभस्त्योः इषुं दधिरे ॥

११ पयोवृधः मखाः अयासः स्वसृतः ध्रुवच्युतः दुध्रकृतः भ्राजदृष्टयः मरुतः आपथ्यः न, पर्वतान् हिरण्ययेभिः पविभिः उज्जिघ्नन्ते ॥

१२ घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि, श्रिये रजस्तुरं तवसं वृषणं ऋजीषिणं मारुतं गणं सश्चत ॥

१३ हे मरुतः! वः ऊती यं प्र आवत, स मर्तः शवसा जनान् अति नु तस्थौ, अर्वद्भिः वाजं नृभिः धना भरते, पुष्यति, आपृच्छ्यं क्रतुं आ क्षेति ॥

९ हे समुदायमें शोभनेवाले, जनताकी सेवा करनेवाले शूरवीर, बलके कारण अधिक उत्साहसे युक्त, मरुत् वीरो! द्युलोक और भूलोकमें तुम्हारा वर्णन हो रहा है। उत्तम आसनवाले सुन्दर आकारवाले रथमें बिजलीके समान तेजस्वी तुम्हारा तेज फैलता है ॥

१० अपने पास उत्तम धनोंके रखनेके कारण सर्व धनोंसे युक्त, एकही घरमें रहनेवाले, अनेक बलोंसे युक्त, विशेष सामर्थ्यवान् शत्रुपर अस्त्र फेंकनेवाले, असीम प्रभाववाले बडे आभूषण धारण करनेवाले, नेतालोग हाथोंमें बाण धारण करते हैं।

११ दूध पीकर पुष्ट होनेवाले, यज्ञ करनेवाले, प्रगति करनेवाले, अपनी इच्छासे गति करनेवाले, स्थिर शत्रुओंको भी उखाडनेवाले, दूसरोंसे न घेरे जानेवाले, तेजस्वी हथियारवाले, मरुत् वीर, मार्गपर चलनेवालेके समानही, पर्वतोंको भी सुवर्णमय रथोंके पहियोंसे पार कर देते हैं ॥

१२ शत्रुको परास्त करनेवाले, पवित्रता करनेवाले, वनमें घूमनेवाले, विशेष हलचल करनेवाले, रुद्रके पुत्रस्वरूप इस वीर समूहकी हम प्रार्थनापूर्वक प्रशंसा करते हैं। धन प्राप्त करनेके लिये, धूली उडानेवाले बलिष्ठ वीर्यवान् और सोमरस पीनेवाले इन वीर मरुतोंको प्राप्त होओ ॥

१३ हे मरुत् वीरो, तुम अपनी संरक्षक शक्तिके द्वारा जिसकी सुरक्षा करते हो, वह मनुष्य बलमें अन्य मनुष्योंसे बढकर श्रेष्ठ बनता है। घुडसवारोंसे अन्न प्राप्त करता है, वीरोंकी सहायतासे धन पाता है, पुष्ट होता है और वर्णनीय कर्म करता है॥

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः १४
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १५

१४ हे मरुतः ! मघवत्सु चर्कृत्यं पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं धनस्पृतं उक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं तनयं धत्तन, शतं हिमाः पुष्येम ॥

१५ हे मरुतः ! अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं ऋतीषाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं नु धत्त, प्रातः धियावसुः मक्षु अगम्यात् ॥

१४ हे मरुत् वीरो ! धनिकोंमें उत्तम कर्म करनेवाला, युद्धोंमें विजयी, तेजस्वी, बलिष्ठ धनसे युक्त, वर्णनीय, जनता का हितकारी पुत्र और पौत्र प्राप्त हो और हम सौ वर्षतक पुष्ट होते रहें ॥

१५ हे मरुतो ! हममें स्थायी, वीरोंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला, सैकडों और सहस्रों प्रकारका बढनेवाला धन दे दो । हमारे पास प्रातःकालही बुद्धिद्वारा कर्मोंका संपादन करनेवाला वीर शीघ्रही आजावे ॥

वीरोंका कर्म

यह वीर काव्य है। इसमें वीरोंके कर्मोंका उत्तम वर्णन है। इस काव्यका प्रत्येक शब्द वीरोंके शुभ गुणोंका वर्णन करता है। मंत्रोंका सरल अर्थ दिया है और वहीं प्रत्येक पदका अर्थ स्पष्ट कर दिया है, इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। जो भी मंत्र पाठक पढकर देखेंगे वह निःसंदेह बोधप्रद और वीरताकी उत्तेजना करनेवाला प्रतीत होगा।

बल प्राप्त करना और बढाना, ज्ञान प्राप्त करना और बढाकर उसका फैलाव करना, संघशक्ति बढाना, प्रत्येक कर्म कुशलतासे और पूर्णतासे करना, युद्धभूमिपर अपना प्रभाव जमाना, पापरहित हो कर पवित्र जीवन व्यतीत करना, शरीरको हृष्टपुष्ट बलवान् और सामर्थ्यवान् रखना और उसको सर्वजन-हितकारी कार्योंमें लगाना, युद्धमें अपने स्थानमें सुस्थिर रहना, शत्रुका कैसा भी हमला आ जाय, उससे न डरते हुए अपने स्थानमें रहना, पर जिस समय शत्रुपर हमला किया जाय उस समय शत्रु कितना भी बलवान् हुआ तो भी उसको उखाडकर फेंकना, इत्यादि अनेक बातें इन मंत्रोंमें हैं. जो मानवोंको सदा ध्यानमें रखनेयोग्य हैं। इन मंत्रोंका प्रत्येक शब्द मननीय और बोधप्रद है। इसलिये पाठक प्रत्येक मंत्रका एक एक शब्द मननपूर्वक देखें और उसका अभ्यास करके बोध प्राप्त करें।

वीरता बढानेवाला यह सूक्त है। इन्द्रके साथ मरुतोंका संबंध है, वह वीरताकाही संबंध है।

(नवम मण्डल)

(९) सोमरस

(ऋ० ९।९३) नोधा गौतमः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् ।

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः ।
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी १

अन्वयः- १ साकमुक्षः स्वसारः मर्जयन्तः दश धीतयः धीरस्य धनुत्रीः । हरिः सूर्यस्य जाः परि अद्रवत् । अत्यः वाजी न द्रोणं ननक्षे ॥

अर्थ- १ साथ साथ जलका छिडकाव करनेवाली, स्वयं हलचल करनेवाली, शुद्धता करनेवाली दस अंगुलियाँ बुद्धिदाता (सोम) को प्रेरणा करनेवाली हैं। हरे रंगका यह (सोम) सूर्यसे उत्पन्न दिशाओंके चारों ओर भ्रमण कर रहा है। गतिशील घोडेके समान (यह सोम) द्रोणके पास पहुंचता है ॥

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ २
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।
मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ३
स नो देवेभिः पवमान रदेन्दो रयिमश्विनं वावशानः ।
रथिरायतामुशती पुरंधिरस्मद्र्य१गा दावने वसूनाम् ॥ ४
नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तं पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम् ।
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५

२ वावशानः वृषा पुरुवारः, मातृभिः शिशुः न, अद्भिः सं दधन्वे । मर्यः योषां न, निष्कृतं अभि यन् कलशे उस्रियाभिः सं गच्छते ॥

२ देवताओंको प्राप्त होनेकी इच्छावाला बलवान् अनेकों द्वारा स्वीकारने योग्य (सोम), माताओंसे जैसा पुत्र (पुष्ट किया जाता है वैसा) जलोंके साथ मिलाया जाता है । पुरुष जैसा स्त्रीके पास जाता है, वैसा शुद्ध स्थानके पास जाता हुआ (सोम) कलशमें गौओं (के दूध) के साथ मिलता है ॥

३ उत अघ्न्यायाः ऊधः प्र पिप्ये । सुमेधाः इन्दुः धाराभिः सचते । गावः चमूषु मूर्धानं पयसा, निक्तैः वसुभिः न, अभि श्रीणन्ति ।

३ और गौका दुग्धाशय (औषधिरूप सोम) पुष्ट करता है । उत्तम मेधा-बुद्धि बढानेवाला सोम (दुग्धकी) धाराओंसे संमिश्रित होता है । गौवें पात्रोंमें रहे (सोमको) अपने दूधसे, धोये वस्त्रोंसे (आच्छादित करनेके) समान, आच्छादित करती हैं (मिलाती हैं) ॥

४ हे पवमान ! सः (त्वं) नः देवेभिः रद । हे इन्दो ! वावशानः अश्विनं रयिं (प्रयच्छ)। रथिरायतां उशती पुरंधिः वसूनां दावने अस्मद्र्यक् आ (गच्छतु) ॥

४ हे स्वच्छ होनेवाले (सोम)! वह तू हमें देवोंके साथ (दान) दे । हे सोम ! (दानकी) इच्छा करता हुआ तू घोडोंसे युक्त धन (हमें) दे । महारथी वीरोंको चाहनेवाली तेरी बुद्धि धनोंका दान करनेके लिये हमारे पास आवे ॥

५ पुनानः (त्वं) नः नु नृवन्तं रयिं उप मास्व । विश्वचन्द्रं वाताप्यं (कुरु) । हे इन्दो ! वन्दितुः आयुः प्र तारि । धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात् ॥

५ छाना जानेवाला (तू सोम) हमारे पासही वीरोंसे युक्त धन ले आ । सबको आनंद देनेवाला वायुको प्राप्त होनेका (कार्य कर) । हे सोम ! (तुम्हारे) भक्तकी आयु बढाओ । बुद्धिसे कर्म करनेवाला सबेरे शीघ्रही (हमारे पास) आ जावे ॥

सोमरस

इस सूक्तमें सोमरसको कैसा तैयार किया जाता है सो बताया है । दसों अंगुलियोंसे सोमपर जल छिडका जाता है, वारंवार उसको स्वच्छ किया जाता है, अंगुलियोंसे दबानेसे उसका रस चारों ओरसे बाहर आने लगता है । पश्चात् वह छाना जाता है और कलशमें भरकर रखा जाता है, उस समय गाइयोंका दूध उसमें मिलाते हैं । सोमरसका रंग हरा होता है, उसका दूध जैसा श्वेत रंग होने तक दूध उसमें मिलाया जाता है । तब वह दूध जैसा दीखने लग जाता है । फिर उसको एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उण्डेलते हैं, जिससे उसमें (वाताप्यः=वात+आप्यं) वायु मिलता है और वह (विश्व-चन्द्रः) सबको आनंद देनेवाला होता है । यह सोमरस आयु बढानेवाला है । बल बढाता है और शरीरकी पुष्टि भी करता है ।

यह सब वर्णन पाठक इस सूक्तमें देख सकते हैं ।

नोधा ऋषिका दर्शन समाप्त

नोधा ऋषिके दर्शनकी

विषयसूची

वैदिक जीवन

(ले०– श्री० नारायणस्वामीजी, अकोला)

इस समय हिन्दुजनताकी कुछ ऐसी धारणासी बन चुकी है कि अपने वैयक्तिक बर्तावमें शास्त्रोंसे कुछ भी सरोकार नहीं हो सकता, क्योंकि सभी व्यवहार सात्विक रहें और केवल मोक्षके लियेही अपना धर्माचरण हो ऐसी शिक्षा हिन्दुधर्मसे हमें मिलती है; अतः अपने दैनंदिन व्यावहारिक जीवनमें शास्त्रोंका उपयोग भला कैसे हो सकता है? हमारी रायमें तो ऐसी धारणा अत्यन्त संकीर्ण तथा एकांगीय है; क्योंकि, भलेही हिन्दुओंका आचरण सात्विक रहे, लेकिन सात्विक शब्दका यह अर्थ कदापि न किया जाय कि दूसरोंके अन्यायपूर्ण बर्तावको चुपचाप सह लें, विरोधी दलके आघातोंको बिना किसी प्रतिकारके लेते रहें, मनमें सहमे सहमे दिन बितायें और व्यवहारमें पूर्णतया अज्ञवत् रहें। ऐसे सात्विक जीवनमें स्वाभिमान नहीं, जयिष्णु मनोवेग नहीं और व्यवहारज्ञान तो तनिक भी नहीं। श्रीभगवद्गीतामें भी उपर्युक्त ढंगकी सात्विक बुद्धिको सात्विक नाम नहीं दिया है; उल्टे ऐसा कहा है कि वह तो कायरपन अथवा तामस बुद्धि है। सात्विक मनोवृत्तिका प्रमुख लक्षण तेजस्विता है जो अक्रोध, शूरता एवं दक्षताके फलस्वरूप आविर्भूत होती है। इसलिए इस जमानेकी हमारी सात्विकताकी धारणा गलत है और तदनुसार धार्मिक आचरणकी कल्पना भी ठीक नहीं है।

आजकल हमने धार्मिक आचरणका अर्थ अत्यन्तही संकीर्ण बना डाला है क्योंकि वह निरे आश्रमधर्मके दायरेमेंही सीमित है। लेकिन हिन्दुधर्म इस तरह आश्रम-धर्मतकही सीमित नहीं है। यह हमारी भूल है कि हम आश्रम-धर्मकोही हिन्दुधर्म मान लेते हैं क्योंकि हिन्दुधर्ममें आश्रमधर्म एवं वर्णधर्मका भी भलीभाँति प्रतिपादन किया है। आश्रमधर्म व्यष्टिके लिए और वर्ण धर्म समाज-समुदायके लिए है। पहला अनित्य और दूसरा नित्य है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासरूपी चार आश्रमधर्म मनुष्यकी विभिन्न अवस्थाओंके अनुकूल बनाये गये हैं और ब्रह्मचर्यके उपरान्त व्यक्तिकी इच्छापर शेष तीन आश्रम निर्भर हैं। इस कारण वे अनित्य हैं। परन्तु वर्णधर्म राष्ट्रधर्मके रूपमें होनेके कारण नित्य है। क्योंकि वह नित्य समाजका धर्म है।

वर्णधर्म या राष्ट्रधर्मके आचरणको कार्यरूपमें परिणत करनेसे राष्ट्रकी स्वतंत्रता सदैव अक्षुण्ण बनी रहती है और राष्ट्रकी प्रगति अविरत रूपसे होती रहती है। जब राष्ट्रके सभी निवासी मध्यवित्त श्रेणीमें समाविष्ट होते हैं, अर्थात् सभी लोग सुखपूर्वक अपनी उदरपूर्ति करते हैं तभी उसकी प्रगति संतोषजनक है ऐसा समझना चाहिए। दुःखसे कहना पडता है कि हिन्दुजातिने नित्य धर्मको तिलांजलि देदी और वह अनित्य धर्मसेही चिपककर यथा-तथा जीवन बिताती रही। इसके फलस्वरूप हिन्दुजाति-को भीषण संकट परंपरासे गुजरना पडा। अतः आश्रम-धर्मके समानही हिन्दुओंको राष्ट्रधर्मकी ओर भी यथोचित ध्यान देना चाहिए।

राष्ट्रकी प्रगति।

शास्त्रकारोंने वर्णधर्म या राष्ट्रधर्मको कभी आँखोंसे ओझल होने नहीं दिया और तदनुसार मानवके बर्तावको निर्धारित किया अतः उन्होंने व्यक्तिको शास्त्रोंके व्यवहारसे कभी पृथक् नहीं रखा। महाभारतमें कहा है कि राष्ट्रकी उन्नतिके लिए किन बातोंमें सतर्कता एवं सावधानीकी आवश्यकता है, देखिए—

रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनं।
मंत्रचिन्ता सुखं काले पञ्चभिर्वर्धते मही ॥१९॥
(महा० शांति० अ० ९३)

राष्ट्रको भीतरी तथा बाह्य शत्रुओंसे बचानेके लिए अर्थात् देशके संरक्षणार्थ स्थानिक सेनाकी आवश्यकता

रहती है। यह सेना सीमा-प्रान्तपर, प्रमुख राजधानीके निकट, वैसेही प्रान्तिक राजधानियोंके समीप और राष्ट्रके युद्धकौशलकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण स्थानोंमें सरकारी अधिकारियोंके पर्यवेक्षण तथा संरक्षणके लिए प्रस्थापित की जाती है। इस भाँति यदि देशमें स्थायी सेना रखी जाय तो देशवासियोंके विद्रोह करनेपर या बाह्य शत्रुओंके आक्रमणोंसे राष्ट्रकी रक्षा हो सकती है। इन स्थानिक सेनाओंके अतिरिक्त आपत्कालके लिए सुरक्षित सैन्यका भी प्रबन्ध करना चाहिए। कारण यही कि परकीय हमलोंके समय स्थानिक सेना तो अपने स्थानसे नहीं हट सकती, प्रत्युत शत्रुओंसे मुठभेड करनेके लिए अधिक सेनाकी आवश्यकता प्रतीत होती है। इसलिए शत्रुदलसे जूझनेके लिए यह सुरक्षित सैन्यही भेजा जाता है। यह सुरक्षित सैन्य सदैव लडाईके लिए सुसज्ज रखना पडता है। परन्तु इतनेसेही कार्यभाग पूरा नहीं होता है क्योंकि शत्रु देशवासी जनतामें प्रचलित सत्ताके विरुद्ध विद्रोही विचार फैलाकर उसे बगावतका झंडा खडाकर देनेके लिए प्रेरित करता है। इसका प्रतिकार करनेके लिए राष्ट्रवासियोंमें राष्ट्रधर्मकी जागृत भावना अक्षुण्ण बनाये रखनेकी आवश्यकता रहती है। यह तभी हो सकता है जब प्रजाको राष्ट्रधर्मकी उत्तम शिक्षा दिलानेकी व्यवस्था की जाती है। राष्ट्रधर्ममें भलीभाँति दीक्षित होनेपरही लोग देशप्रेममें मतवाले बन राष्ट्र-संरक्षणार्थ लडनेके लिए तैयार हो जाते हैं। इसी तरह अपनी राजनीति सुगुप्त रखनी पडती है और जनताको भी सुखी रखनेकी आवश्यकता है। संपत्तिसे सुख मिलता है और संपत्तिके उत्पादनके लिए राष्ट्रान्तर्गत खनिज वस्तुसमुदायसे देशमें उत्पत्तिको बढाना चाहिए। तभी जनता सुखी बन सकती है।

आज भी हम देखते हैं संसारके स्वतंत्र राष्ट्रोंमें राष्ट्र-प्रगतिके ये पंचविध कार्य किये जाते हैं। संसारका हरएक स्वतंत्र देश स्थानिक सैन्य तथा सुरक्षित सैन्यका प्रबंध करता है, युद्धके लिए सुसज्ज रहता है, जनतामें राष्ट्रप्रेम उपजाता है और सभी देशके लोगोंको सैनिक शिक्षा प्रदान करता है, गुप्त ढंगसे राजनैतिक कार्य करता है और देशकी भौगोलिक संपदासे काम उठाकर संपत्ति निर्माणद्वारा राष्ट्रको धनसंपन्न बना देता है।

सुरक्षित तथा स्थानिक सैन्यके लोग सदा शस्त्रधारी रहते हैं इसलिए वे हमेशा युद्धसज्जामें दिन बिताते हैं। परन्तु राष्ट्रमें तीन प्रकारके अन्य लोग भी रहते हैं। वे क्रमशः बुद्धि, श्रम एवं संपत्तिद्वारा अपनी जीविका चलाते हैं। ज्ञानसे निर्वाह चला लेनेवाले बुद्धिजीवि, व्यापारमें निरत लोग संपत्तिजीवी और कच्चा माल तैयार करनेवाले, वस्तुओंको ढोनेवाले लोग श्रमजीवी कहलाते हैं। यद्यपि इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त लोगोंको सैनिक शिक्षा दी गयी हो तथापि ये सदैव शस्त्रोंके संपर्कमें नहीं रहते हैं। शायदही ये लोग हाथमें शस्त्र उठाते हों। पर सभी राष्ट्रीय लोगोंकी सैनिक वीरवृत्ति एवं सामरिक मनोवृत्ति सदैव सिद्ध रहे इस हेतुसे वर्तमान युगमें स्वतंत्र देशके नेता लोग विविध प्रकारकी आयोजनाएँ प्रस्तुत करते हैं और ऐसी व्यवस्था करते हैं जिसके फलस्वरूप जनता चिरकालतक शस्त्रोंसे परिचित रहती है। छोटा बालक जमीनपर रेंगना छोड जब खडे रहने लगता है तब बन्दूक हाथमें उठा वह खडा रहे, बन्दूकधारी हो छोटे बालक खेलने लग जाएँ। स्वतंत्र देशमें आज ऐसी प्रणाली दीख पडती है कि माता-पितासे ले रिश्तेदार, अध्यापक, विभिन्न संस्थाएँ, नेता लोग और अंतमें सरकारतक बालकोंकी सामरिक मनोवृत्तिको उत्तेजित करनेमें व्यग्र हैं।

राष्ट्रमें सैनिक मनोवृत्ति सदैव प्रबल एवं जागृत रहे इस हेतु हमारे प्राचीन शास्त्रनिर्माता भी सतर्क रहे हैं और उन्होंने ऐसा प्रबन्ध कर रखा है कि जिसके फलस्वरूप हरएक हिन्दु पुरुष नित आयुधों एवं हथियारोंके संपर्कमें रहने पाय। ऐसा प्रबन्ध करते समय उन्होंने बडीही दूरदर्शितासे काम लिया है। इसका परिचय पाठकोंको आगे चलकर मिल जायगा। आरोग्य, स्वाभिमान, यश तथा संरक्षण आदि अनेक संबंधोंके बारेमें ख्याल रखा गया है। अब हम इनके विषयमें कुछ अधिक देख लेंगे। इस लेखके प्रारंभमें दिग्दर्शित करनेके अनुसार, व्यवहारमें हिन्दु व्यक्ति कैसे हथियारोंसे सम्बन्ध रहती है यही बताया जायगा। संक्षेपमें यों कहा जा सकता है कि पाठक ध्यानमें रखें कि जन्मसे ले अन्त्येष्टि संस्कारके पूर्ण होनेतक हिन्दु

पुरुष हथियारोंसे पृथक् नहीं रह सकता है। यह कैसे, सो धीरे धीरे बतलावेंगे।

जन्म

वसिष्ठने एक जगह वर्णन किया है प्रसूत होनेवाली स्त्रीका कमरा कैसे हो, उसमें वह कहता है—

> ऐन्द्रे तु विक्रमस्थानं आग्नेय्यां पचनालयम् ।
> वारुण्यां भोजनगृहं नैर्ऋत्यां सूतिकागृहम् ॥

बालकके जन्मते समय प्रसूतिगृहके पूर्वमें विक्रमस्थान अर्थात् अखाडा हो, आग्नेयी दिशामें रसोईघर हो, पश्चिममें भोजनालय तथा नैर्ऋत्यदिशामें प्रसूतिस्थल हो। अखाडेमें मचनेवाली खलबली अगर उस शीघ्रही माता बननेवाली स्त्रीके कानोंतक पहुँचती रहे तो कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उसके मनोभाव कैसे होंगे। पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि नूतन जन्मे बालकके बारेमें उस शिशुकी माताके अंतस्तलमें कैसे विचार उठ खडे होंगे। निस्सन्देह, अखाडेका वह वायुमण्डल प्रसवोन्मुख स्त्रीके लिए तो सुतरां लाभकारी सिद्ध होगा। माता होनेवाली नारीके समीप चक्कू या छुरा रखनेकी प्रथा हम लोगोंमें प्रचलित है। धर्मशास्त्रमें कहा है बालकके प्रसूत होनेही, अर्थात् माताके उदरसे बाहर आनेही पिता उसे अपनी गोदमें बिठालेवे और अगला मंत्र बोले—

> " अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव "

हे बालक! तू पाषाणके समान सुदृढ शरीरवाला बन, शत्रु दलका विनाशकर्ता बन। सुवर्ण ज्यों ज्यों गर्म किया जाय वैसे वैसे वह चमकने लगता है। वैसेही हे शिशु! तेरे जीवनमें जब कभी आपत्तियाँ सामने आजायँ तो तू अधिकाधिक तेजस्वी बन। इस मंत्रका उच्चारण कर पिता अपने हाथके अँगूठेसे उस नवजात शिशुके मुँहमें मधु छोड देवे और पश्चात् नालछेदन किया जाय। इसके बाद छठे दिन षष्ठीपूजन विधि बतलाई गयी है।

यह विधि इस उद्देश्यसे की जाती है कि नवजात शिशु तथा उसकी माता निरोगिता तथा दीर्घ जीवन प्राप्त करें और बुराइयाँ दूर हों। इस षष्ठीपूजनमें सेनापति कार्तिकेय तथा हाथमें असिधारा धारण करनेवाली दुर्गादेवीकी पूजा अर्चा की जाती है। इस रात्रीको बालकका भाग्य 'सटवी' नामक देवी लिख डालती है ऐसी धारणा हम लोगोंमें प्रचलित है और तदनुसार मातृगृहमें स्याही एवं लेखनी रखी जाती है। कुछ लोग धनुष्य, बाण, छुरा तथा लेखनी रख देते हैं ऐसा भी देखा जाता है।×

आगे चलकर शिशुके जन्मसे ले चौथे मासमें उसे देवालयमें देवदर्शनार्थ ले चलते हैं और यह 'निष्क्रमण विधि' कहलाई जाती है। इस दिन पहलेही वार बालकको घरके बाहर लिये चलते हैं। धर्मशास्त्र कह देता है देवलमें देवदर्शन एवं ध्वज-दर्शन करवाया जाय। हिन्दु-बालकको प्रथम देर तथा राष्ट्रीय ध्वजका दर्शन उचित माना गया है। इस समारोहमें लगभग आठ मंगल वस्तुएँ कही गयी हैं—

> दर्पणः कलशः कन्यास्तथा सुमनसोऽक्षताः ।
> दीपमाला ध्वजो लाजाः सम्प्रोक्तं त्वष्ट-मंगलम् ॥

बालकके छठे माहमें 'अन्न प्राशन संस्कार' किया जाता है। इसमें पहलेही वार शिशुको अन्न खिलाया जाता है और इस दिन अपने इष्टमित्रोंको भोजनार्थ न्यौता देनेकी प्रथा है। बालकके प्राशनके पश्चात् और इष्टमित्रोंका भोजन हो चुकनेपर बालकके सम्मुख निम्नलिखित वस्तुएँ रखी जायँ—

> अग्रतोऽथ परिन्यस्य शिल्पभांडानि सर्वशः ।
> शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम् ॥

बालकके आगे तरवार, चक्कू, छुरा, रुपये, सोना बर्तन लेखनी आदि पदार्थ रखे जायँ और वह जिसे स्वयंही छूलेगा उस वस्तुके द्वारा उसका निर्वाह आगे चलकर होता रहेगा ऐसा अनुमान करें। उस छुई हुई वस्तुके संस्कार बालकपर अधिक होंगे ऐसा समझना ठीक है।

बाल्यावस्था

पांच वर्षकी अवस्था होनेपर बालकको पाठशाला भेज

× बाबल्य सूबेके 'अपरीत' लोग षष्ठीपूजन करते हैं और इस दिन शिशुके दोनों कपोलोंपर छुरेसे तनिक व्रण करते हैं। इस व्रणसे टपकता हुआ रुधिर सीधे शिशुके मुँहमें चला जाता है और इस भाँति शुरुसेही उसे रुधिर पिवताका चस्का लगवा देते हैं। 'अपभ्रंश होनेके कारण संस्कृत 'अपरीत' शब्द 'आफ्रिडी' बन गया है।

देते हैं और इस प्रकार लेखनका प्रारंभ होता है जिसे ' विद्यारंभसंस्कार ' नाम दिया गया है । किसी शुभ दिन शिक्षकको घरपर बुलाते हैं, बालकसे गणपतिकी तथा पाटीकी पूजा करवाते है और अध्यापक महाशयका आदर सत्कार किया जाता है । हम लोगोंमें विद्यारंभसंस्कार करनेकी प्रथा प्रचलित है । बालकके हाथों पहले पहल 'श्रीगणेशाय नमः' अक्षर लिखवाकर फिर उसीके द्वारा उन अक्षरोंकी पुनरुक्तिकी जाय ऐसी चाल दीख पडती है।

परन्तु अभी कुछ दिनोंसे यह प्रथा लुप्त हो रही है और इसका कारण बतलाया जाता है कि 'श्रीगणेशाय नमः' अक्षर लिखनेमें कठिन हैं। निस्सन्देह, आजके समानही शास्त्रकार इस बातसे अपरिचित नहीं थे कि अ, आ, इ, ई अक्षरोंकी अपेक्षा ' श्रीगणेशाय नमः ' लिखनेमें कठिनाई प्रतीत होती है । तिसपर भी शास्त्रकार कठिन अक्षरोंकोही लिखवानेके लिए आग्रह करते हैं, इसका कुछ उद्देश्य अवश्य है लेकिन उसकी ओर ध्यान न देते हुए हम लोग आजकल 'श्रीगणेश'से प्रारंभ करनेकी प्रथाको धीरेधीरे छोडते जा रहे हैं, इससे बडी हानी होनेकी संभावना है ऐसी हमारी राय है ।

आज रूसमें छोटे बालकोंसे पहलेपहल 'लेनिन' अक्षर लिखवाये जाते हैं । यूरोपमें प्रचलित ए, बी, सी, डी जैसे अक्षरोंसे तुलना करनेपर लेनिन अक्षर लिखनेमें पहले-पहल कठिनाई अवश्य प्रतीत होती है ।तो भी रूसी लोग लेनिन अक्षरोंके लिए क्यों आग्रह करते हैं, इस प्रश्नकी उत्तर यह है कि रूसी लोगोंकी यह मनोकामना है आगे आनेवाली संतान लेनिन जैसी बन जाए, अतः वे बालकोंको पहले लेनिन अक्षरसमूहही सिखलाते हैं ।

अपने शास्त्रकारोंकी भी यही इच्छा थी कि आर्य लोग गणेशजीके समान हों। वैदिक साहित्यमें लोकनायक, लोकनाथ या राष्ट्रके नेताके नाते श्रीगणपतिजीका वर्णन किया गया है । शास्त्रकार यही चाहते थे कि आर्यकुमारों-के सम्मुख गणपतिका आदर्श-प्रस्थापित हो । राजनीतिमें भी कहा है कि राजकुमारोंकी शिक्षामें प्रजातंत्र आदर्शको अवश्य स्थान मिले । अतः हम सभी आर्यलोगोंसे विनति करना चाहते हैं कि वे ' श्रीगणेशाय नमः ' लिखवानेकी रीतिको न छोडें । बालकोंको पहले येही अक्षर सिखाये जायँ और उन्हें बतलाया जाय कि वैदिक साहित्यमें श्रीगणेशजीके चरित्रका महत्त्व क्या है । आरंभमें कहानीके तौरपर श्रीगणेशजीका चरित्र कह दिया जाय और उस कथाको बालकोंसे बारबार दुहराया जाय । इससे यह कथा उनके ध्यानमें ठीक तरह पैठ जावेगी और कुछ बडे हो जानेपर कथाका तात्पर्य अपने आप उन्हें ज्ञात होगा ।

आजकल पाँच या छः वर्षकी अवस्थावाले बालक अखाडेमें आने लगते हैं और कुछ थोडा खेलकर तथा वहाँ की चहलपहल देखकर लौट जाया करते हैं। ऐसा होते-होते वे छोटे बालक बडे बालकोंका अनुकरण करने लगते हैं और पश्चात् उन्हें हम धीरेधीरे लेझिम, खेल, डंडा घूमाना जैसी बातें सिखाते हैं । आजकल पश्चिमके प्रदेशोंमें भी छुटपनसेही बच्चोंको बौद्धिक तथा शारीरिक शिक्षा दी जाती है। अतः पाश्चात्य राष्ट्रोंके तथा हमारे वर्तमान अनुभवमें बहुतही साम्य है ।

हमारे धर्मशास्त्रोंमें भी कहा है कि बाल्यावस्थामेंही बालकोंकी शास्त्रविद्याकी शिक्षा प्रारंभ हो। जिस धर्म-शास्त्रमें, बालकके पाँचवे वर्षमें विद्यारंभ-संस्कार करनेका विधान किया है वहींपर बतलाया है कि पूसके माहमें एक शुभ दिन ' चापविद्या प्रदानं 'का प्रारंभ हो जाए। देखिए पुरुषार्थ-चिंतामणिका विद्यारंभ-संस्कार प्रकरण।

कहनेका अभिप्राय यह है कि धर्मशास्त्रने ऐसी आ-योजना कर दी है कि बालकोंकी शास्त्र एवं शस्त्र शिक्षाका प्रारंभ एक साथ होने पाय । लेखनका प्रारंभ हो चुकनेपर आठवे वर्षमें बालकका उपनयन हो जाता है और इसका प्रमुख हेतु, बालककी शास्त्रशिक्षाका यथोचित प्रारंभही है । जैसे उपनयन-संस्कारसे शास्त्रशिक्षाका प्रारंभ होता था उसी प्रकार प्राचीनकालमें शस्त्रशिक्षा-का सूत्रपात करनेके लिए जो उपनयन-संस्कार किया जाता था उसे ' धनुर्वेदोपनयन ' नाम दिया गया था। विश्वा-मित्र धनुर्वेदमें इस धनुर्वेदोपनयनका ब्यौरेवार वर्णन किया है और हमने व्यायाम-ज्ञानकोशके द्वितीय खंड ' धनुर्वेद ' नामक लेख यह जानकारी दी है ।

यहाँपर प्राचीन-कालकी एक महत्त्वपूर्ण प्रथाका उल्लेख करना उचित जान पड़ता है। उपनयन संस्कारके समय बटुको शस्त्र दिये जाते थे। गणेश-पुराणमें वर्णन पाया जाता है कि कश्यप पुरोहितके पुत्र विनायकको उपनयन-के अवसरपर कई शस्त्रास्त्र दिये गये थे। (क्रीडाखंड अ० १०) वाल्मीकिके आश्रममें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचंद्रजीके दोनों पुत्र लव एवं कुश धनुर्वेद तथा युद्धशास्त्रकी शिक्षा पाते थे। वाल्मीकि रामायणमें कहा है, ये बालक आगे चलकर श्री रामचन्द्रजीकी राजसभामें रामायण गागाकर सुनाते थे तब ऋषियोंने उन्हें शस्त्रास्त्र प्रदान किये थे। गणेश-पुराणमें एक जगह उल्लेख मिलता है कि एक बटुको शस्त्र देकर उसका नया नाम रखा गया था। विचारशील पाठक जान लेंगे कि इस प्रकार शस्त्र देनेके उपरान्त नये नाम-संस्करणसे बालकके मनमें कैसे भाव जाग उठेंगे और शस्त्रदाता किस भावसे प्रेरित हो शस्त्र दे देता है।

विवाह

विद्याध्ययनके उपरांत युवकका विवाह होना शेष रहता है और उस अवसरपर वर हाथमें शस्त्र धारण कर लेता है। भारतके सभी क्षत्रियोंमें यह प्रथा है और इस देशमें जो मिश्र शस्त्रधारी ब्राह्मण हैं उनमें भी अभीतक वरके शस्त्र ले लेनेका रिवाज चालू है। मालवा, राजपूताना जैसे प्रान्तोंमें हरकोई इस प्रथाको देख सकता है। सभीको यह बात विदित है कि क्षत्रिय जातिमें विशेष अवसरोंपर वधूका गठबंधन तलवारसे हो जाता है। श्री नाभजीने अपने 'रुक्मिणी-स्वयंवर' ग्रन्थमें इस प्रथाका उल्लेख किया है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वर्णोंके समान अन्य वर्णोंमें विवाहके समय नियोजित वरको हाथमें शस्त्र लेना पड़ता है, यह बात सर्वविश्रुत है। अतः अधिक लिखनेका कोई कारण नहीं है।

पितृतर्पणकी क्रिया

विवाहित युवकको आगे चलकर क्रमसे पितृतर्पण करना पड़ता है। अपने पितरोंका तर्पण किन वस्तुओंसे किया जाय इस विषयमें यह श्लोक देखनेयोग्य है।

खड्गमौलिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम्।
मणिकाञ्चनदर्भैर्वा न शुद्धेन कदाचन॥

तलवार, मोती, रत्न, सुवर्ण तथा कुशकी सहायतासे पितृतर्पण किया जाय, केवल पानीसे नहीं। इस समय हम लोगोंमें हाथमें अँगूठी डाल लेनेकी य। जनेऊमें पवित्रक रख लेनेकी प्रथा है और कुछ लोग तो हाथमें कुशका बना पवित्रक रख लेते हैं लेकिन धर्मशास्त्रमें खड्ग अर्थात् तलवारके बारेमें कहा है उसकी पर्वाहही नहीं की जाती है। इसका प्रमुख कारण अपने समाजका अधःपतनही है। हिन्दूजातिमें अच्छी प्रथाएँ विलुप्त हुई और बुरी तथा गन्दी प्रथाएँ जारी हुई अतः जातिकी गिरावट हुई। नहीं तो हरदिन जिस तलवारसे पितरोंका तर्पण करना पड़ता है वही तलवार अंग्रेजोंने जब लोगोंसे छीन ली तब जनतामें किसी प्रकारकी खलबली नहीं मची। क्या इससे यह साबित नहीं होता? जनता धर्मशास्त्रोंसे कितनी अपरिचित रही थी। ऊपर पांच वस्तुओंका उल्लेख किया जा चुका है और धर्मशास्त्रने ऐसा निर्णय दे रखा है कि यदि हो सके तो पाँचोंका ग्रहण करना उचित है। आचार-रत्न ग्रन्थ देखिए।

धर्मशास्त्रके अनुसार तर्पणके अवसरपर तलवार हाथके तलुवेके बीच रखनी चाहिये। पितृहीन होनेपर हरएक आर्यको, चाहे वह किसी भी वर्णका क्यों न हो, प्रतिदिन पितृतर्पण करना चाहिये ऐसी धर्मशास्त्रकी आज्ञा है। यहाँपर पितरका अर्थ ठीक समझ लेना चाहिये। आजकल कुछ लोग पितरका भूतपिशाच, ऐसा अर्थ कर बैठते हैं पर यह निरा अज्ञान है। किन्हें पितर कहा है और कौन उनका तर्पण करे, यह अगले श्लोकमें स्पष्ट कर दिया है।

त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्तते।
चतुर्थो संप्रदातेषां पंचमो नोपपद्यते॥

अपने पिताकी मृत्युके पश्चात् पिता, पितामह एवं प्रपितामहको जल दिया जाय तथा पिण्ड भी दे देवें। मानवी आयु सौ वर्षकी है इस आधारपर यह तर्पण एवं पिण्ड-प्रदानकी प्रथा निर्भर है। उदाहरणके लिए, एक मनुष्य यदि १०० वर्षतक जीवित रहता है तो उसके घरमें पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र एवं उसका पुत्र इस प्रकार चार

पुश्तें होती हैं, पुरुषकी एक पीढी २० या २५ वर्षकी मानी जाती है अर्थात् बीस या पचीस वर्षकी अवस्था होनेपर पुत्रोत्पत्ति होती है। जिसके घरमें इस प्रकार ५ पुश्तें रहती हैं वहाँ प्रपौत्रका पुत्र अज्ञान पर प्रपौत्र प्रथम सज्ञान है और अपने पिता, पितामह, प्रपितामहकी मृत्युके पश्चात् उदक तथा पिण्डदान देना पडता है। जिन तीन बुजुर्गोंका दर्शन हुआ और जिनके आचार, विचार एवं जीवन-यात्राके निकट संपर्कमें दिन बिताने पडे, जिन्होंने अपनेको पाळापोसा उनके प्रति कृतज्ञताके भाव दर्शाना मानव-प्रकृतिके अनुकूल है।

संसारके सभी तरहके लोगोंमें यह स्वभाव पाया जाता है, लोग बीती हुई बातोंका स्मरण करते हैं; कोई स्मारक खडा कर देता है, कोई ग्रन्थका अर्पण करता है और कोई उत्सव मनाते हैं। ऐसे अनेक प्रकारोंसे लोग पूर्वजों-की स्मृतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें तत्पर हैं। आजकल समाचारपत्रों तथा मासिकोंके भी उत्सव मनाए जाने लगे हैं। इस मनुष्यस्वभावको सूक्ष्म ढंगसे देखभाल कर हमारे शास्त्रकारोंने तर्पणकी आयोजना बना रखी ताकि उत्सव एवं स्मारकोंको मनाते हुए भी मानव अपने जन्मदाता पितरोंका नित स्मरण रख सकें।

पितरोंका अखंड स्मरण होनेपर मनमें अच्छे भाव, जैसे पूर्वजोंके समानही स्वयं भी यशस्वी बनें, उठखडे होते हैं। धर्मशास्त्रकारोंका कथन है कि पितरोंसे तीन प्रकार-की बातें सीखनी चाहिए,जैसे पूर्वजोंके समान विद्याधिगम करना, समाजमें परिवार या कुलकी मानप्रतिष्ठ अक्षुण्ण बनाये रखना और पूर्वजोंके आदर्शोंको अविरत रूपसे प्रचलित रखना। अपने निजी पितरोंके संबंधमें इतना विवरण हो चुका है। अर्थात् जिनसे हमारा जन्म हुआ वे निजी पितर हैं पर इनके अतिरिक्त अन्य लोगोंके अनेक उपकारोंसे भी हम लाभ उठाते हैं अतः उनकी स्मरण न करना मानों कृतघ्न बनना है। इसलिये अपने पितरोंके समानही अन्य उपकार कर्ताओंका भी नित स्मरण रखना उचित है, अर्थात् उन्हें उदक-दान देना, उन्हें पितृवत् समझना चाहिये। जो पालन करता हो वह पितृवत् बनता है। धर्मशास्त्रकारोंके कथनानुसार पितर वे होते हैं जो—

जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

जन्म देता हो, अपनी देखभाल करता हो, शिक्षा दिलाता हो, भोजन प्रदान करता हो तथा संकटोंके आने-पर रक्षाका प्रबंध करे। इस प्रकार पांच प्रकारके पितर माने जा सकते हैं। अपने घरवाले बुजुर्गोंके समानही ऊपरके श्लोकमें कहे चार तरहके लोग भी उपकार करते हैं अतः उनके नामपर भी तर्पण करना उचित है। जैसे बुजुर्गों एवं आप्तेष्टोंके नामपर तर्पणविधि बतलाई है वैसेही इन सबके लिए पिण्डदान भी कहा है।

घरके वृद्ध पुरुषोंमें जिस किसीके नामपर उसके देहान्तकी तिथिके दिन भावुक अंतःकरणसे पिण्डदान, अन्नदान वगैरा किया जाता है वही श्राद्ध कहलाता है। यदि एक व्यक्तीके नामपर किया जाय तो श्राद्ध और भाद्रोंके कृष्णपक्षमें-पितृपक्षमें-घरके लोग, अपने रिश्तेदार एवं आप्तेष्टोंकी ओरसे जो पिण्डदान तथा अन्नदान होता है वह 'पक्ष' कहलाता है। इस पक्षके दिन अपने सभी उपकार कर्ताओंका स्मरण किया जाता है और अनेक कार-णोंसे ऐसे लोग अधिकाधिक निकटवर्ती बनते हैं। अनुभव इस बातकी पुष्टि करता है।

हम मानवी व्यवहारमें देखते हैं कि किसी दलमें, पक्ष या पार्टीमें, एक ध्येयसे प्रेरित हो उसे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए विभिन्न कार्य करनेवाले लोग इकट्ठे हो जाते हैं। उसी तरह हमपर उपकार करनेवाले लोग पिण्डदान करनेके अवसरपर एकत्रित हो जाते हैं, और व्यवहारके अनुसारही धर्मशास्त्रकी रचना हुई है।

अभीतक हम लोगोंमें यह प्रथा प्रचलित है कि अपने ऊपर जो लोग उपकार करते हों वे पितर माने जायँ। महाराष्ट्रके दो विख्यात क्षत्रिय परिवारके पुरुषोंको भाद्रोंके कृष्णपक्षमें 'पितर' के नाते उन ब्राह्मण परिवारोंमें भोज-नार्थ जाना पडता है जिनपर उन्होंने उपकार किये थे। गुजरात-प्रान्तमें पक्षके दिन एक ब्राह्मण कुटुम्बमें एक ग्वालेको पितरकी हैसियतसे भोजनके लिए बुलाते हैं। एक ब्राह्मणके घरमें, जिसके पुरखे स्वराज्यमें दुर्गनिरीक्षक थे, पक्षके दिन अहीर ज्ञातिकी एक सधवा स्त्री बुलाई जाती है और उसे कुछ दान देकर आदरसे खिलाया जाता है।

धर्मशास्त्रके रचयिताओंने तर्पणके संबंधमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि जैसे अपने ऊपर उपकार करनेवालोंके लिए अपनी कृतज्ञ बुद्धि प्रकट करनेके हेतु तर्पण किया जाता है वैसेही राष्ट्रके प्रमुख नेताके सभी जनतापर अनन्त उपकारोंके बोझके कारण उस नेताके नाम-राष्ट्रबलके नाम जनता तर्पण करे। तदनुसार सन १९१० में लोकमान्य तिलकजीके देहावसानपर मुंबईमें समूची हिन्दु-जातिने समुद्रतटपर लोकमान्यके नामपर तर्पण किया था। यह बात अनेक लोगोंसे छिपी नहीं है।

स्वराज्यमें किसी बडे सेनापतिके देहावसानके उपरान्त सभी सिपाही नदीके किनारे स्नान कर चुकनेपर उस सेनाधीशके नाम तर्पण किया करते थे ऐसा इतिहाससे ज्ञात होता है। अपनी आर्य संस्कृतिमें भीष्म पितामह-सदृश व्रती, तपस्वी एवं महाकुशल योद्धा दूसरा कोई नहीं हुआ अतः आर्य ऐसे महान् पुरुषको न भूलें इस हेतु भीष्मकी निर्वाण तिथिका उल्लेख धर्मशास्त्रकारोंने किया है। माघमासकी शुक्ल अष्टमीको 'भीष्माष्टमी' नाम दिया गया है। यद्यपि धर्मशास्त्रकारोंने स्पष्ट कहा है कि सभी आर्य उस दिन भीष्मके नामपर तर्पण करें तो भी इस भीष्माष्टमी दिन हमारी जातिमें किसी तरहकी जागृति नहीं दिखाई देती है। हम आशा करते हैं कि निकट भविष्यमें हिन्दूजातिका ध्यान इस भीष्माष्टमीकी ओर आकर्षित होगा। हमारे प्राचीन इतिहासमें उल्लेख पाया जाता है कि किन्हीं अवसरोंपर अपने शत्रुके रुधिरसे भी पितृतर्पण किया गया था। अर्वाचीन इतिहासमें शिन्दे (सिंधिया) परिवारके अलिजा बहादूर दत्ताजी, जनकोजी तथा पाटीलबाबा जैसे वीरोंके दुश्मनोंके खूनसे पितृतर्पण करना सबको विदित है। अलिजा बहादुर रोहिलाओंके शोणितसे पितृतर्पण किया करते थे और कविने निम्नलिखित ढंगसे इसका बखान किया है—

"वे पाटील मराठोंके, वे महाद्जी सिंदे कुलके
रवि कौन पूर्ण करपाया है उनकी वीरत्वपूर्ण कथाओंको कवि।
कहाँ मराठे होते, दिल्लीपतिका कहाँ डोलता आसन। कौन कहे लेके लोहितसे, निज पितरोंका करता तर्पण॥"

पुरुषोंके समानही नारियोंका भी पितरमें समावेश होता है इसलिए इस बारेमें पृथक् कुछ लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

शस्त्रपूजा

हम कह चुके हैं कि प्रतिदिनके तर्पण कार्यमें हर विधिमें तलवारकी आवश्यकता है। अब यह बतलाना आवश्यक जान पडता है कि यह तलवार घरमें किस तरह रखी जाय। मियानमें चन्दनका आटा डालकर उसमें तलवार रखी जाय। जैसे हम अपने शरीरके बारेमें सतर्क रहा करते हैं वैसेही खड्गके संबंधमें भी सचेत रहना चाहिए। दिनके समय खड्गपूजा करनी चाहिए अर्थात् फूलोंकी माला उसपर डाली जाय। जूठे हाथोंसे तलवारको न छूना चाहिए। निद्राके मौकेपर सिरहाने तलवार न रखी जाय। उसमें अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखना चाहिए। बिना कामके तलवार मियानसे बाहर न निकाली जाय। तलवारका दाम किसीसे न कहा जाय और किसी ऐरे गैरे आदमीको उसकी रखनेकी जगह विदित न होने पाय। असावधानीसे तलवारको हाथ न लगाया जाय; ऐसे नियम शास्त्रकारोंने बना रखे हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं अतः उन्हें कार्यरूपमें अवश्य परिणत करना चाहिए। घरमें रखे हुए अन्य हथियारोंके बारेमें भी उपरिलिखित नियम लागू समझने चाहिए। कुछ शस्त्रोंके जलका उपयोग औषधके नाते किया जाता है और वह बात हमारे समाजमें विश्रुत है। वातविकारपर घोडोंके रोग दूर करनेके लिए तथा स्त्रियोंके प्रसवार्थ पहले तलवारका पानी दिया जाता था। संक्षेपमें घरमें विद्यमान हथियारोंको सतर्कतासे रखना चाहिए, उपयोग भी सोचविचारके साथ करना चाहिए। उनका दुरुपयोग न होने पाय।

दैनंदिन व्यवहारमें शस्त्रोंका जो उपयोग होता था उसका उल्लेख संक्षेपमें किया जा चुका है। अब हम विचार करेंगे कि हमारे देशमें शस्त्रास्त्रोंकी पूजा करनेकी प्रणाली कैसे थी। धार्मिक परंपराके अनुसार शस्त्रपूजाके दिन विशेषतया आश्विनके नवरात्र, हनुमान-जयंति, नाग पंचमी आदि हैं। आश्विन-मासके नवरात्रको दुर्गा-नवरात्र नाम दिया गया है। समूचे हिन्दुस्थानमें यह पर्व

मनाया जाता है। भारतमें हिन्दुजातिकी एकताके जो कुछ भी चिन्ह बिखरे पडे हैं उनमें दुर्गापूजा एक प्रमुख चिन्ह है।

हमारे देशमें बहुतसे धार्मिक उत्सव मनाये जाते हैं पर इनमें कुछ प्रान्तिक तथा कुछ सार्वजनिक हैं और इन सार्वजनिक उत्सवोंमें दुर्गाका उत्सव अन्तर्भूत है। कश्मीरसे ले रामेश्वरतक और कराचीसे कलकत्तेतक भारतके सभी प्रान्तोंमें तथा हिन्दुओंकी सभी जातियोंमें इस उत्सवका स्थान प्रमुख है। शक्ति पानेके लिये, बुराइयोंको हटानेके लिये दुर्गाका उत्सव मनानेकी प्रथा चल पडी। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि हमारी जातिमें निःश्रेयसके ग्रन्थके स्वरूपमें भगवद्गीता और अभ्युदय ग्रन्थके नाते 'सप्तशती' विख्यात हैं। दोनों ग्रन्थोंमें ७००, ७०० श्लोक पाये जाते हैं। अब तो आगे चलकर अवश्यही यह दुर्गा या भवानीका उत्सव राष्ट्रके अभ्युदयार्थ सुतरां मनाना चाहिए। इस भवानी-नवरात्रमें शस्त्रोंके कार्य बराबर नौ दिनोंतक चलने चाहिए-- अर्थात् सभी प्रकारके पौरुषपूर्ण खेल खेले जायँ। बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवताके स्वरूपमें श्रीगणेशजी विख्यात हैं। इस समय इस बुद्धि देवताके सामने जो कार्यक्रम रखे जाते हैं वे सभी मिश्र स्वरूपके होते हैं अर्थात् बौद्धिक तथा शारीरिक शक्ति प्रयोगके कार्य पूरे किये जाते हैं। यदि आगे चलकर ये दो प्रकारके कार्यक्रम विभक्त कर पृथक् मनाये जायँ तो ठीक। श्रीगणेशजीके सम्मुख बौद्धिक कार्यक्रम पूरे करने चाहिए जिनमें गायन तथा भजनका अंतर्भाव हो और आश्विनके नवरात्रमें शक्तिप्रदर्शक खेल कर दिखलाने चाहिए। उसी प्रकार ग्राममें विद्यमान सभी आखाडेके लोग परस्पर मिलें जिससे एक दूसरेकी शक्तिका सबको विदित हो।

विश्वामित्र धनुर्वेदसे पता चलता है कि प्राचीनकालमें शस्त्रास्त्रोंकी खनखनाहटसेही आश्विन एवं कार्तिक-मासका सूत्रपात किया जाता था। जिन्होंने शस्त्रविद्याका त्यागकर अन्य व्यवसायमें अपना चित्त लगाया होवे, अर्थात् जो अखेड हों, वर्षमें दो मौहूर्तक शस्त्राभ्यास करलिया करें ताकि वे पढी हुआ भूल न जायँ। आश्विन एवं कार्तिक दो मास इसके लिए उपयुक्त हैं। क्योंकि इन दो महिनोंमें बारिस तथा जाडा दोनोंका अभाव रहता है। कहीं कहीं खेत काटलिये जाते हैं। इससे भूमि पर्याप्त मात्रामें मिलती है। कुछ स्थानोंमें खेतमें धान्यवृद्धि हुआ करती है अतः कृषकोंको यथेष्ट अवकाश मिलता है और जहाँ तहाँ हरियाली लहरा उठती है। इसी कारणसे इन दो महिनोंमें सभी लोग यथेष्ट शस्त्राभ्यास कर लें। यही बात निम्नलिखित श्लोकमें कही है-

पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरणहेतवे।
मासद्वयं श्रमं कुर्यात् प्रतिवर्षं शरदृतौ॥

इस दाक्षिणात्योंमें यह प्रथा है कि नौ दिनोंतक शस्त्रोत्सव मनाकर दसवे दिन दशहरेके मुहुर्तपर घरसे बाहर निकल पडते हैं। पहले स्वराज्यमें हमारे सिपाही इसी दिन आक्रमण करनेके हेतु प्रस्थान करते थे। चढाईके लिये जानेकी यह प्रथा अपने देशमें अति प्राचीन-कालसे चली आई है। इसका निर्देश तैत्तिरीय ब्राह्मणमें पाया जाता है। वहाँ लिखा है कि शरद् ऋतुमें हमले चढानेके लिए कुरु एवं पाञ्चाल नरेश बाहर चले जाया करते थे और ग्रीष्म ऋतुमें वापिस लौट आते थे। देखिये-

तस्माच्छिशिरे कुरुपञ्चालाः प्राञ्चो यान्ति।
तस्माद्वसन्तं व्यवसायादयन्ति। तस्मान्नैदाघे
प्रत्यञ्चः कुरुपञ्चाला यान्ति॥
(तै. ब्रा. १-८-४-१ तथा २)

पहले हम लोगोंमें शस्त्रपूजाके समानही एक दूसरेको शस्त्रास्त्र प्रदान करनेकी प्रथा प्रचलित है। यद्यपि धर्मशास्त्रानुसार क्षत्रियके लिए दान लेना निषिद्ध है तो भी उन्हीं क्षत्रियोंको शस्त्रास्त्र देने चाहिए ऐसा धर्मशास्त्रका आदेश है। इसी प्रकार यदि दूसरा कोई शस्त्र देवे तो क्षत्रियको उचित है कि वह उनका ग्रहण कर एक स्थानपर संग्रह कर ले। क्योंकि राष्ट्ररक्षणार्थ उनका बडा भारी उपयोग हो सकता है। कहते हैं कि आधुनिक युग तो बन्दूक तथा रायफलका युग है। जो शस्त्र सब प्रकारसे लोगोंके निकट रहता है, अर्थात् सैनिक एवं नागरिक दोनों जिसका प्रतिपक्ष उपयोग करते हैं उस शस्त्रका नाम उस युगको दिया जाता है। पहले धनुष्यका युग था, मध्ययुगमें खड्गयुगका प्राधान्य था। धनुर्युगमें एक दूसरेको धनुष

दिया करते थे और मध्ययुगीन कालमें खड्गका आदान प्रदान हुआ करता था। वर्तमानकालमें रायफल दिये जाते हैं।

भारतमें धनुर्युगके समय धनुर्दानका उल्लेख पाया जाता है। श्रीरामचन्द्रजीको अगस्त्यने धनुष्य, बाण एवं तलवार प्रदान की थी। ध्यानमें रहे कि अगस्त्य मुनि उस समय वानप्रस्थाश्रममें थे। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वान-प्रस्थाश्रममें प्रविष्ट लोग भी शस्त्रधारण कर लिया करते थे। बलरामने भी अपने दामाद अभिमन्युको एक अच्छा धनुष्य उपहारके रूपमें दे दिया था। निमि नरेशके अग्रज भ्राता देवरातने जनकको इसी तरह एक धनुष्य प्रदान किया था। जनकके घर वह एक सन्दूकमें पडा था। खांडव वनका दहन करते समय अग्निने अर्जुनको गांडीव धनुष्य, बाण, तूणीर तथा रथ प्रदान किया था और श्रीकृष्णको एक चक्र, एक आग्नेयास्त्र तथा गदा मिली।

इन शस्त्रास्त्रोंके प्रदानमें दो तीन महत्त्वपूर्ण बातें पाई जाती हैं। प्रथमतः जो व्यक्ति जिस शस्त्रके संचालनमें अधिक चतुराई दर्शा सके वही उसका प्यारा शस्त्र उसे दिया जाता था। शस्त्रप्रदानमें भी इस बातका ख्याल रखा जाता था कि वे हथियार दोनों प्रकारके अर्थात् परंपरागत तथा नये तैयार किये हुए हों। दो भाँतिकी परंपराएँ प्रचलित थीं वीरपरंपरा तथा पितृपरंपरा। और वीरपरंपराको अधिक गौरवके साथ देखते थे। अर्जुनका गांडीव धनुष्य वीर-परंपराके अनुसारही अर्जुनको मिला था और इसका इतिहास विराट्पर्वके ४३ वे अध्यायमें दिया है जिसमें स्पष्टतया प्रतिपादन किया है कि कौन कौन वीर उसका उपयोग करते थे और उनके पराक्रम किस प्रकारके थे। राष्ट्रके एक वीरके पश्चात् दूसरे वीरको यह धनुष्य मिलता गया अर्थात् राष्ट्रके भूतपूर्व सर्वोपरि वीर पुरुषद्वारा भावी उच्चकोटिके शूरकोही यह मिल सकता था। इस धनुष्यकी सहायतासे वह पराक्रमी पुरुष राष्ट्रका संरक्षण कर उसकी श्रीवृद्धि करता था।

आनुवंशिकरीतिसे शस्त्रग्रहण करनेकी प्रथा हमारे इति-हासमें बहुत पुरानी है। ऋग्वेदमें इसका नामनिर्देश पाया जाता है, (ऋ. १०-१८-९)। प्रथा कुछ ऐसी जान पडती है कि मृतकका धनुष्य शवके हाथमें रख तदुपरान्त अपनी संतानके संरक्षणार्थ, सेनाको बचानेके लिए और शत्रुसे बदला लेनेके लिए उस धनुष्यको उठा लिया करते थे। इस प्रकार वंशपरंपरा प्रचलित शस्त्रास्त्र बडे आदर एवं सम्मानपूर्वक घरमें रख लिये जाते थे, कभी कभी उनकी पूजा की जाती थी और किन्हीं मौकोंपर उनसे यथोचित लाभ भी उठाया जाता था।

हम लोगोंमें एक रस्म यों था कि बालकोंकी वर्षगाँठके शुभअवसरपर उन्हें कपडोंके साथ शस्त्र भी दिये जायँ। इतिहाससे जान पडता है कि उन दिनों नरेश वर्षगाँठके दिन शस्त्र बाँटते थे। सिसोदिया कुलमें उत्पन्न राजा समरसिंह अपनी वर्षगाँठके दिन 'रामपूरी कर्ता' नामक तलवारें बाँटता था। राजपूत बालकोंको छुटपनमें 'कृपाण' दिया करते थे क्योंकि वे तलवार उठा लेनेमें अक्षम थे और वे बालक कृपाणसे मेमनेको काट लेते थे। इस भाँति बाल्यावस्थासेही वे योद्धा बननेकी कला सीख लेते थे।

शवदहनके उपरान्त खिलारके फूट जानेपर शवका भस्म बुझानेकी प्रथा है और इसके लिए जो मटका लिया जाता है वह अश्मासे-पत्थरसे फोड दिया जाता है। लेकिन धर्मशास्त्रके कथनानुसार वह परशु-कुल्हाडीसे फोडना चाहिए। हिन्दुजातिमें यह कुछ प्रथा सी पड गयी है कि जहाँ जहाँ शस्त्रका प्रयोग कहा है वहाँ अवश्यही शस्त्र छोड दिये हैं। अज्ञान एवं भयके मारे लोगोंने धर्मत्याग कर रखा है और इसका भीषण परिणाम हिन्दुजातिके पतन, विनाशमें दिखाई दे रहा है।

अब पाठकोंके ध्यानमें यह बात आगई होगी कि प्रत्येक हिन्दुमात्रके वैयक्तिक व्यवहारमें अर्थात् पितृकार्य तथा दैनंदिन व्यवहारमें सदैव शस्त्रोंका संपर्क रहा करता है। देवकार्य भी हिन्दुजातिमें बिना शस्त्रोंके असंभव है। स्मार्त तथा श्रौत क्रियाकलापोंमें शस्त्रोंका उपयोग उपदिष्ट है। अपने घरों तथा देवालयोंमें जो मूर्तियाँ पायी जाती हैं उनके हाथोंमें शस्त्रास्त्र रखें हैं जिनकी पूजा करना हिन्दुमात्रके लिए अनिवार्य है। कोई हिन्दु शस्त्रपूजा टाल नहीं सकता।

हमारी जातिमें जो मूर्तियाँ पूजी जाती हैं वे अवश्य

ऐतिहासिक पुरुष हैं जिन्होंने दुर्जनोंका संहार कर सज्जनोंका पालन किया था। यह महान् कार्य निभानेके लिए उन्हें सचमुच हाथमें शस्त्र लेने पडे थे। परन्तु हा दैव ! हमने वास्तविक शस्त्र छोड दिये और सुवर्ण, चान्दी या पीतलके शस्त्र बनाना शुरू किया। ऐसे वे तीक्ष्णतारहित शस्त्र क्या कामके हैं? और कोई आश्चर्यकी बात नहीं कि इस तरहके शस्त्रोंकी पूजा करनेवाले भी मंदबुद्धिके हो गये हैं, उनमें तीखापन नहीं के बराबर है। स्मार्तयज्ञमें एक फलकी बलि दी जाती है और उसे तोडनेके लिए तलवारकी आवश्यकता है। यजमान एक यज्ञमें हाथमें नंगी तलवार लिये यज्ञ-मंडपकी तीन प्रदक्षिणाएँ कर लेता है। इस ढंगसे मूर्तिपूजा सरल स्मार्त कर्मोंमें शस्त्रोंका उपयोग है। श्रौतकार्यकलापमें भी विना शस्त्रोंके कार्य चल नहीं सकता है, जिसके विषयमें यहाँपर अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हमें इतनाही बतलाना था कि हिन्दुधर्ममें पुरुष किस तरह शस्त्रोंके निकटवर्ती संपर्कमें अपना जीवन बिताता है। इसको आश्रम-धर्मान्तर्गत शस्त्रसंपर्क ऐसा नाम दिया जा सकता है।

ऋग्वेदके सूक्त इतिहास नहीं है अर्थात् सूक्तके रचयिताओंके कालका इतिहास उनमें ढूँढना व्यर्थ है। हाँ; एक बात यह है कि सूक्तकर्ताओंके युगका इतिहास जाननेके लिए इन सूक्तोंका उपयोग साधनके तौरपर किया जा सकता है, क्योंकि संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं कि जो इतिहासके काममें न आवे। इतिहास महान् व्यापक विषय है। (कौटि, अ० १-अ० ५-१४) ऋषियोंकी अंतःस्फूर्तिकी झलक सूक्तोंमें दिखाई देती है और निस्सन्देह इस आंतरीय स्फूर्तिके लिए कारण रहा होगा जो सूक्तोंमें पाया जाता है। जो कारण जिस सूक्तमें उपलब्ध होवे उसका ग्रहण किया जाय; उदाहरणके लिए, राजनीति, तत्त्वज्ञान, वैद्यक, कर्मकांड, शिल्पशास्त्र, व्यक्तिगत सुख दुःख आदि। अतएव शंकराचार्य कहते हैं कि ऋग्वेद सब शास्त्रोंकी खनि है, देखो [ब्रह्मसूत्र १-१-३ " अनेकशाखाभेदभिन्नस्य देवतिर्यङ्मनुष्यवर्णाश्रमादिप्रविभागहेतोः ऋग्वेदाद्यारकस्य सर्वज्ञानाकरस्य।"] इसी प्रकार-

" ऋचो हि यो वेद स वेद वेदान्
यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम्।
सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म
यो मानसं वेद स वेद सर्वम् ॥
(वायुपुराण उत्तर-खंड अ० १७।९५)

इस श्लोकसे भी ऋग्वेदका महत्त्व सूचित होता है। आर्य-सभ्यताके सभी शास्त्र ऋग्वेदमें विद्यमान् हैं और वह ऋग्वेद दिग्देशकालसे व्याप्त है। केवल परमात्माही दिग्देशकालके बाहर है। यदि ऋग्वेद दिग्देशकालसे व्याप्त हो तो उसका विचार करना, उसके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करना उचित है।

ऐसी जानकारी पानी हो तो सबसे पहले सूक्तके चारांगका परीक्षण करना चाहिए अर्थात् ऋषि, व्यक्ति, देवता तथा छन्दकी जाँच करनी चाहिए। संस्कृत-भाषामें ऋषि शब्दका अर्थ निर्धारित हो चुका है, उदाहरणार्थ—

ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ।
एतत्सन्नियते तस्मिन्ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः॥७९॥
(वायु० पूर्वखंड अ० ५९)

ऊर्ध्वरेता तपस्युग्रो नियताशी च संयमी।
शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसंधो भवेदृषिः ॥४॥

वेदकर्ता ऋषियोंके अतिरिक्त हमारे समाजमें ऋषि हो चुके हैं और आगे होंगे भी। हमारे समाजमें चाहे जिस किसीको ऋषि नहीं कहते हैं। ऋषि पद पानेके लिये विशेष योग्यताकी आवश्यकता होती है। इसलिये सूक्तके शीर्षभागपर प्रथमतः जो ऋषि शब्द लिखा होता है उसके बारेमें सोचना आवश्यक है। इस भाँति ऋषि शब्दपर विचार करनेसे सिद्ध होता है कि उस ऋषि शब्दके लिखनेमें हेतु है, सकारणही वह शब्द लिखा गया है। उस ऋषि शब्दसे विदित होता है कि उस युगमें सूक्तका रचयिता एक महान पुरुष हुआ हो। यह तो सूक्तनिर्माताके बारेमें साधारण कोटिका ज्ञान हुआ।

इस साधारण ज्ञानका स्पष्टीकरण आगे चलकर व्यक्ति शब्दसे होता है। व्यक्ति अर्थात् विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज इत्यादि। वेद, इतिहास, पुराण-ग्रन्थोंमें इन व्यक्तियोंकी

जानकारी मिलती है और इन ग्रन्थोंके रचयिता भी कहते हैं कि इतिहास एवं पुराणोंकी सहायतासे वेदका अर्थ समझ लेना चाहिये। यह प्रसिद्ध है कि इतिहास-पुराण-ग्रन्थोंके रचयिता ऋषि तथा वेदवेत्ता है।

इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥
(महाभारत और वायुपुराण अ १)

यो विद्यात् चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजः।
न चेत् पुराणं संविद्यात् नैव स स्याद्विचक्षणः॥
(वायुपुराण)

पूर्व ऋषियोंकी इस आज्ञाको यदि हम मान लें तो हमें सूक्तकर्ता ऋषियोंका चरित्र या जानकारी मिल जाती है। उदाहरणके तौरपर देखिए-ऐसा लिखा है कि ऋग्वेदके भृगु ऋषि शिल्प-शास्त्रवेत्ता थे [४-१५-२०] कश्यप ऋषि शिल्पशास्त्रसे परिचित थे।

यत्ते शिल्पं कश्यप रोचनावत् इंद्रियावत् पुष्कलं चित्रभानु। यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकं, तस्मिन् राजानमधिविश्रयेमम्॥
(तै० आ० १,७,१५,१,७)

अगस्त्य ऋषि शिल्पशास्त्रकी जानकारी रखते थे
[१-१६५ से अंततक]

मानस्य सूनुः। मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।

[कारुसे कारीगर सूचित होता है।] इसी प्रकार अगस्त्य-के बारेमें [१-१७९-६] ऋग्वेदमें प्रसिद्ध है कि आंगिरस सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु एवं वाज शिल्पवेत्ता थे। सुधन्वाके भाई घोर [३-३६] संवर्त [१०-१७२] तथा विरूप [८-४३] सूक्तोंके रचयिता हैं। सुधन्वाके भ्राता बृहस्पतिका वंश-तपुर्मूर्धा [१०-१८२] भरद्वाज [१०-१३७] शंयु (९-४४) सूक्तनिर्माता हैं। च्यवन-भार्गवने मनुके पुत्र शार्यातका अभिषेक निष्पन्न किया था (ऐ. ब्रा ८-२१) यह च्यवनभार्गव मंत्र रचयिता है (ऋ. १०-१९) भुवनपुत्र विश्वकर्माका अभिषेक कश्यपने किया है (ऐ ब्रा. ८-२१) कश्यप (ऋ. १-९९ इत्यादि) पैजवन सुदास-अभिषेककर्ता वसिष्ठ (ऐ. ब्रा. ८-२१) वसिष्ठ (ऋ. ७-१) अविक्षित पुत्र मरुत्त अभिषेक-कर्ता संवर्त आंगिरस (ऐ. ब्रा. ८-२१)।

चंद्र एवं सूर्यवंशके नरेश ऋग्वेदमें मंत्रकर्ताके रूपमें पाये जाते हैं— मनुर्वैवस्वत (८-२७) नाभा-नेदिष्ठ (१०-६१) शार्यात-मानव (१०-९२), ययाति (९-१०१), नहुष (९-१०१), मनुः-सांवरणः (९-१०१), प्रतर्दनः दैवोदासिः (९-९६) प्रतर्दनः काशीराजः (१०-१७९), पृथु-वैन्यः (१०-१४८), पुरूरवा ऐलः (१०-९५), सुदाः पैजवनः (१०-१३३), बुधः सौम्यः (१०-१०१), शिविः औशीनरः (१०-१७९), पुरुमीढ-सौहोत्रः (४-४३), मान्धाता यौवनाश्वः (१०-१३४), अजमीढ सौहोत्र (४-४३), त्रसदस्यु-पौरुकुत्स्यः (४-४२), वीतहव्य (५-१५), आदि आदि। ये सभी नरेश तपश्चर्याकी सहायतासे ऋषि हुए और ब्राह्मणोंके गोत्रमें सम्मिलित हुए। पुराणोंसे ज्ञात होता है कि ये नरेश ब्राह्मणोंके किन गोत्रोंमें समाविष्ट किये गये।

ऋषि विश्वामित्र, जो ऋग्वेदका एक मंत्रकर्ता ऋषि है, सोमवंशी राजा था। तपसे वह विश्वामित्र ब्राह्मण हुआ अतः इसके वंशमें जन्मे हुए सभी मंत्रकर्ता चंद्रसूर्य-वंशीय नरेश मंडलके अंतर्गत हैं।

विश्वामित्रका बहनोई जमदग्नि और जमदग्निका पुत्र जामदग्न्य दोनों मंत्रकर्ता हैं (जमदग्नि ३-६२) जामदग्न्य (१०-११०)। जमदग्निका पूर्वज च्यवन भार्गव (भृगुवंशका) ये सभी ऋषि चंद्रसूर्यवंशीय हैं।

ऋग्वेद कोई इतिहास नहीं है। इसमें देवताओंके संबंधमें अंतःस्फूर्तिकी सहायतासे रचे हुए स्तोत्र हैं। इन स्तोत्रोंमें जो कुछ भी जानकारी मिलेगी वह वेद, इतिहास,पुराण ग्रन्थोंमें जहाँ कहीं भी मिलनेकी संभावना हो, ढूँढ लेनी चाहिये। इससे वेदका स्पष्ट ज्ञान होगा, अन्य किसी उपायसे नहीं और ऋषियोंकी योग्यता विदित होगी। ऋषियोंकी योग्यतासे परिचित होनेपर पता लगेगा कि वे किस बुद्धिसे देवता मान लेते थे। विभिन्न भावनाओंको पृथक् पृथक् अवसरपर प्रकट करनेमें छंदका उपयोग होता है और यही छंदका तत्त्व है।

वेद, इतिहास, पुराणोंमें पाई हुई ऋषियोंकी इस जानकारीको न मान लेना इन सब ग्रन्थोंका अपमान करना है। इस जानकारीके लिए सनातनी लोग क्रुद्ध हों यह संभव नहीं। यदि कोई इस जानकारीके लिये नाराज हों तो उन्हें मुँहतोड उत्तर दिया जासकता है।

उपर्युक्त विवेचनसे ऐसा दर्शाया जा सकता है कि मंत्रकर्ता ऋषि चंद्र सूर्य-वंशीय नरेश मंडलकी शासन-छत्र-छायामें विद्यमान थे। यदि किन्हींके बारेमें जानकारी उपलब्ध न हो तो वैसा लिखा जा सकता है। यदि ऐसा बतलाया जा सके कि जिस युगमें शासनतंत्र सुचारु रूपसे चलाया जा सका हो उसी कालमें ये मंत्रकर्ता अस्तित्वमें थे, तो यह सिद्ध होगा कि वह समय विद्या, शास्त्र एवं कलाओंकी प्रगतिका था। सूक्तोंपरसे उच्च कोटिकी शासन-व्यवस्थाके बारेमें जो साधारण ज्ञान प्राप्त होता है वही इन इतिहास पुराणोंसे स्पष्ट होता है। इससे यह भी ज्ञात हो सकता है कि ऋग्वेदकालीन आर्य लोग कैसे थे। लोगोंको विदित होगा कि वेदको इतिहास मान लेनेसे (गलतफहमी, अज्ञान तथा सायणाचार्यजीका अनुकरण) किस तरहके अपसिद्धांतोंको आधुनिक संशोधकोंने मान्यता दी है।

वेदमें जो क्रियावाचक एवं व्यक्तिवाचक शब्द पाये जाते हैं उनका स्पष्टीकरण (पदार्थ-बोध) सायणने नहीं किया है। केवल शाब्द बोध किया है। यह व्याकरणसे किया है। आगे चलकर लोगोंने इसीका अनुकरण किया है। सायणको कर्मकाण्ड लिखना था अतः उन्होंने कर्मकांडके लिये पर्याप्त अर्थ बना डाला। इसके लिये वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते। हाँ, आगे चलकर विद्वानोंने कर्मकांडका पल्ला नहीं छोडा और अभीतक केवल शाब्द-बोधही लिखते आ रहे हैं। दूसरे शास्त्रोंकी सहायतासे पदार्थ-बोधका लेखन नहीं करते हैं।

मेरे अबतकके लेखनसे मेरी यह धारणा व्यक्त हुई होगी कि वेदके स्पष्ट ज्ञान होनेके लिये सूक्तके बहिरंग अर्थात् ऋषि, भक्ति, देवता एवं छन्दकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये और यह अनिवार्य है। मेरा यह कथन वास्तवमें प्राचीनोंकी आज्ञाके अनुकूल है, इसमें मेरा निजी कुछ भी नहीं है।

गोत्र-प्रवर

वर्तमानमें धर्मशास्त्रांतर्गत पुरुषार्थ-चिंतामणि, निर्णय-सिन्धु-संस्कार, कौस्तुभ आदि ग्रन्थोंमें गोत्र-प्रवरोंकी जानकारी लिखी जाती है और पंचांगवाले भी इसेही उद्धृत करते हैं। धर्मशास्त्रोंके इन निबंध-ग्रंथोंमें दी हुई गोत्र-प्रवरोंकी जानकारी मूल पुराणग्रंथोंमेंसे ली हुई है। इन पुराणोंमें गोत्रप्रवरोंकी जानकारी देकर पश्चात् कहा जाता है कि उन उन वंशोंमें इतने मंत्रद्रष्टा या मंत्रकर्ता हुए। निबंधग्रन्थ-रचयिताओंने गोत्रप्रवरोंके संबंधमें लिखते समय मंत्रकर्ताओंके बारेमें कुछ ज्ञातव्य बातें लिखनेकी प्रथा छोड दी, अतः लोग यह बात भूलसे गये कि, अपनेही वंशके ऋषि मंत्र-निर्माता हैं जिसके फल स्वरूप जनतामें अज्ञान फैल चुका है। यदि कोई यह सवाल पूछे कि इन्होंने मंत्रकर्ताओंकी जानकारी लिख देनेकी प्रथा क्योंकर छोड दी तो उत्तर यह है कि पूर्वमीमांसकोंके वेदविषयक विचारधारासे ये प्रभावित हुए थे। यह कहना भूल है कि वेदका विचार मीमांसकोंके ख्यालके अनुसारही करना चाहिए।

मत्स्य पुराणके अध्याय १४४ में, गोत्र, प्रवर तथा हर-एक मूल ऋषिके वंशमें कौन कौन मंत्रकर्ता हुए, कौन क्षत्रिय नृपति उस ऋषिवंशमें सम्मिलित हुए यह बतलाया है।

इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान ब्राह्मणोंके जो गोत्र-प्रवर-ऋषि हैं उन्हींके वंशमें मंत्रकर्ता उत्पन्न हुए थे। नहीं तो पुराणोंको अप्रमाण मान लेना पडेगा।

अहिंसाका अर्थ

(ले० श्री० पं० गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर, औंध)

' और प्रतिक्षण यह देखते रहो कि तुम्हारे आचरणसे कोई भी जीव व्यथित न होने पावे। प्रभु शाक्यमुनिका यही आदेश था। उन्होंने एक कथा सुनाई थी, जिसमें तिमिंगल वैश्यकी अहिंसक-वृत्तिका वर्णन था। उसके शरीरपर जूँएँ हो गयीं। मणिभद्र ब्राह्मणने उसे कहा कि 'तिमिंगल! तुम इन जूओंके नाशका कोई उपाय करो। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्। शरीरकी शुद्धि यही धर्मका साधन है।' तब तिमिंगलने उत्तर दिया, ' ब्राह्मण! तुम्हारे उपदेशके लिये धन्यवाद। परन्तु इनका नाश करना मैं अनुचित समझता हूं। यदि मैंने इन्हें अपने शरीरसे हटा दिया, तो फिर ये जीविका कहाँ प्राप्त करेंगीं? तिसपर ब्राह्मण बोला, ' उनकी जीविकाकी चिन्ता करनेका तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं। जिसने उन्हें निर्माण किया है, उसपर यह प्रश्न छोडो। तुम्हें जो शरीर मिला है वह शरीर स्वच्छ रखना तुम्हारा कर्तव्य है।' परन्तु तिमिंगलने ब्राह्मण मणिभद्रकी बात मानी नहीं। अन्तमें तिमिंगल निर्वाणको प्राप्त हुवा। तात्पर्य अहिंसा धर्मका मूल है। इसी पथपर चलते हुवे तुम निर्वाणकी ओर बढ सकते हो।'

भिक्षु सर्वमंगलका उपदेश समाप्त हुवा। सर्व श्रोता-ओंने श्रद्धापूर्ण अन्तःकरणोंसे शीस झुकाकर उसे ग्रहण किया। केवल प्रसेनही ऐसा था कि जिसे भिक्षु सर्व-मंगलने अहिंसाका समर्थन करनेके लिये जो युक्ति बताई वह जंची नहीं। वह सोचता रहा कि जूएँ न मारनेसे निर्वाण कैसे मिल सकता है?

उपदेश समाप्त होनेपर भिक्षु सर्वमंगल तथा श्रोतृवर्ग मिलकर गाने लगे—

'सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठे व धम्मे निच्छातो। निब्बुतो सीतिभूतो सुखपटिसम्वेदी ब्रह्मभूतेन अत्तानाविहरति॥'

" जो न अपनेको सन्तप्त होने देता है, और न दूसरोंको सन्ताप पहुंचाता है, वह इसी जन्ममें शोकरहित, सुखी, शीतल, सुखानुभवी, ब्रह्मभूत होकर विचरण करता है।'

परन्तु इस दीर्घनिकाय-गीतका एक अक्षर भी प्रसेनके कानोंतक न पहुंच सका। वह अपनेही विचारमें मग्न रहा।

\+ + +

उन दिनों चारों ओर बुद्ध भिक्षुओंका बोलबाला था। भिक्षुओंके झुंडके झुंड इस गांवसे उस गांवको अहिंसाका प्रचार करते हुवे घूम रहे थे। सम्राट् अशोक स्वयं बुद्ध-धर्मके अनुयायी हो चुके थे। यद्यपि उनका देहान्त हो गया था, तो भी राजाश्रयके कारण पुष्ट हुवा हुवा बुद्धमत अन्यमतोंको दबाते हुवे लोगोंकी युयुत्सुप्रवृत्ति हटाकर उसकी जगहपर अहिंसाका साम्राज्य प्रस्थापित कर रहा था।

कुछ एक विशिष्ट सीमातक यह बात ठीक थी। परन्तु सब लोग तो समानधर्मा नहीं हुवा करते। सज्जनोंने दण्डका उपयोग करना छोड दिया यह देखतेही दुर्जन बल खाकर अत्याचार करनेपर उतारू हो गये। सब अधिकारी गण बुद्धमतानुयायी बननेके कारण वे इन अत्याचारियोंका दमन करनेमें समर्थ होनेपर भी अकर्मण्य हो बैठे। लोग प्राणहीन हो चुके।

\+ + +

उत्कलका एक नगर श्रीवर्धन अपने बुद्ध विहारोंके कारण उत्कलभरमें प्रसिद्ध था। उन विहारोंमें बुद्धभिक्षु बडी तादादमें रहकर उत्कलमें धर्मप्रचार करा करते। भिक्षु सर्वमंगल उन्हींमेंसे एक प्रमुख भिक्षु थे। वृद्धावस्थाके कारण उन्होंने अब प्रचारके लिये घूमना छोड दिया था। श्रीवर्धनमेंही रहकर लोगोंको उपदेश देते हुवे वे निर्वाण-पदकी राह देख रहे थे।

विहारमें एक आसनपर बैठकर भिक्षु सर्वमंगल विनय-पिटकका पाठ नूतन भिक्षुओंको पढा रहे थे।

'चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।'

" हे भिक्षुओं, सर्वसाधारणके हितके लिये, लोगोंको सुख पहुंचानेके लिये, जनपर दया करनेके लिये तथा देवताओं और मनुष्योंका उपकार करनेके लिये घूमो।"

इस पिटकवचनपर सर्वमंगल कुछ बोलही रहे थे कि श्रीवर्धनके वृद्ध नागरिक महासेन अपने पुत्र प्रसेनको लेकर विहारमें आ पहुंचे। स्वयं वृद्ध भिक्षुको प्रणाम करते हुवे उन्होंने प्रसेनको प्रणाम करनेके लिये कहा, और बडी लीनतासे एक बाजूको भूमिपर बैठ गये।

" कहो महासेनजी! कुशल तो है?" वृद्ध भिक्षुने पूछा।

" प्रभुकी कृपासे शरीर कुशल है।"

"और अन्तःकरण? वह अबतक गौतम-चरणोंमें लीन नहीं होता?"

"प्रभु! अगर घरमेंही पीडा निर्माण हो, तो अन्तःकरण शान्त कैसे रह सकता है?"

" कैसी पीडा? क्या कोई बीमार हो गया है?"

" अगर बीमार हो जाता तो औषधियोजना करके अनामय हो सकता। प्रभु, मेरा पुत्र विद्रोही हुवा है!"

" तुम्हारा पुत्र? प्रसेन?" अपनी झुर्रियांभरी मुद्रा प्रसेनकी ओर घुमाकर भिक्षु स्नेहभरे शब्दोंमें बोले " क्यों प्रसेन, पिताकी आज्ञा नहीं मानते?"

" नहीं नहीं भन्ते!" झट जरा आगे बढकर महासेन बोले, " मानता तो है। मेरी आज्ञाके बाहर जरा भी नहीं जाता। इसके जैसा पुत्र पाना एक भाग्यकी बात है।"

वृद्ध भिक्षु हंस पडे और बोले, "अरे फिर कैसा विद्रोह? विद्रोह और आज्ञाधारित्व ये दो बातें एक जगह नहीं रह सकतीं, जैसा कि दुःख और सुख। एक बार प्रभु शाक्यमुनिने कहा था –

" वही तो! वही तो इसके विद्रोहका मूल है!"

" ऐं! मैं नहीं समझने पाया!"

" कहनेमें भी मुझे लज्जा मालूम होती है। प्रभु शाक्यमुनिके वचनोंपर यह श्रद्धा नहीं रखता!"

एकदम वृद्ध भिक्षुके मुद्राभावमें परिवर्तन होकर वहां पीलापन छा गया। मंद स्वरमें उन्होंने " नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।" यह मंत्र कहते हुवे प्रणाम किया, और फिर प्रसेनकी ओर मुडकर बोले, " क्या प्रसेन, जो कुछ तुम्हारे पिता कहते हैं, ठीक है?"

" जैसा प्रभु समझें!" नीचे सर झुकाये हुवे प्रसेनने उत्तर दिया।

" तुम जानते हो, अश्रद्ध मनुष्य दुःखका भागी हो जाता है?"

" जी हां!"

" और फिर भी भगवान् शाक्यमुनिके वचनोंपर अश्रद्धा रखते हो?"

" उनका जीवन मेरे लिये एक निरुपम श्रद्धेय वस्तु है। परन्तु आखरी वे भी तो मनुष्यही थे–।"

वृद्ध भिक्षु तथा उनके सन्मुख बैठे हुवे नूतन भिक्षु सिहर उठे। अपने जीर्ण हाथ कानोंपर रखते हुवे सर्वमंगल बोले, " प्रभु, यह बालक अज्ञानी है, उसे क्षमा कीजिये।"

नूतन भिक्षुओंमेंका एक भिक्षु राहुल क्रोधसे बोल उठा, 'भगवन्! आप हमें आज्ञा कीजिये। इस पापीको विहारके बाहर ले जाकर इसकी मरम्मत करनेमें कोई देरी न लगेगी।'

" शान्त हो जाओ राहुल! आज तुम्हें भी क्या हुवा है न जाने! भिक्षु होकर भी तुम अपने क्रोधको नहीं दबा सके!" सर्वमंगल व्यथित अन्तःकरणसे बोले।

" कोई आश्चर्य नहीं है प्रभु!" प्रसेन कुछ उत्तेजित होकर बोला, " क्रोध तो मनुष्यका स्वभाव है। उसे नष्ट करना प्रकृति-धर्मके विरुद्ध है। वह सहाय्यकारी भी होता है, यदि मनुष्य उसे अपने अधीन रखे। और वही मनुष्यको करना चाहिये। सर्वथा अहिंसानुशिष्ट परिपालन प्रकृतिके विरुद्ध है। आपके आत्यंतिक अहिंसा-वचनोंपर मेरा विश्वास नहीं है। इसीलिये पिताजीकी दृष्टिसे मैं विद्रोही हूं।"

" तुम्हारा कल्याण हो प्रसेन! अब वृद्ध हो चुका हूं। इस बुढापेमें तुम्हारे अमंगलकी कामना करके जैसा पाप करके मैं अपने निर्वाण-मार्गमें बाधा निर्माण करना नहीं चाहता। जाओ। भगवान् शाक्यमुनि तुम्हें सद्बुद्धि दें।

वेही तुम्हारेमें परिवर्तन कर सकते हैं। तुम्हारे मनके भाव परिवर्तित करनेका सामर्थ वृद्ध भिक्षु सर्वमंगलमें नहीं है।"

इतना कहनेपर झट उठ कर भिक्षु सर्वमंगल विहारके अन्तर्भागमें चल दिये।

× × ×

दस बारह दिनोंतक प्रसेनका अन्तःकरण क्षुब्ध रहा। बार बार वह विचार करने बैठ जाता। परन्तु खूब सोचने-पर भी वह भगवान् बुद्धकी आत्यंतिक अहिंसासे सहमत न हो सका।

परिस्थिति भी ऐसी कुछ ढलती गई कि उसने आत्यंतिक अहिंसा और प्रसेन इन दोनोंमें एक गहरी खाई निर्माण की। इन दिनोंमें चोर लुटेरोंका उपद्रव अधिकाधिक बढने चला। श्रीवर्धनका नगररक्षक शत्रुजित अभी कुछ दिनोंके पहले बुद्धधर्मका दीक्षित हो चुका था, तबसे उसने अपराधियोंको दण्ड देना बिल्कुलही छोड दिया। यह शुभ सन्देश पातेबराबर सबके सब चोर तथा अत्याचारी लुटेरे हर्षके मारे उछलने कूदने लगे। आजतक शत्रुजितके राज्यमें उन्हें अपना निर्वाह चलाना दूभर हो गया था।

एक दिन सुबह उठतेबराबर लोगोंने सुना कि रातको दस बारह सशस्त्र लुटेरोंने आकर एक मुहल्लाका मुहल्ला बरबाद कर छोडा। कई निरपराध लोगोंका वध किया गया। अपने बालबच्चोंमें सोई हुई अबलाओंपर बर्बर अत्याचार किये गये। एक दो घर जला भूनकर और अगणित सम्पत्ति लेकर लुटेरे चले गये। वह मुहल्ला बुद्धमतानुयायी लोगोंका होनेके कारण किसीने भी प्रतिकार करनेका यत्न-तक न किया।

यह वार्ता सुनतेबराबर प्रसेन आगबबूला हो उठा। उसने सोचा कि सर्पको नमस्कार करना, बिच्छूकी पूजा करना, ये व्यवहार चाहे जितने उच्च भूमिकाके क्यों न हों, फिर भी व्यवहारी मनुष्यके लिये वे लाभदायक नहीं हो सकते। जबतक यह विश्व व्यवहारी लोगोंसे भरा पडा है, तबतक इन अत्याचारी सर्पबिच्छुओंके लिये कोई दूसराही उपाय ढूंढना होगा।

फिर दूसरे दिन और एक अत्याचारकी खबर लोगोंने सुनी। चौथे दिन उन्होंने सुना कि कुछ लुटेरे बौद्ध विहारों-पर हमला कर बैठे। उन्हे किसीने बताया था कि वहाँ नगरके एक श्रेष्ठीने सुरक्षितताके लिये अपना धन छिपाकर रखा है। परन्तु कुछ न मिलनेपर वे दो चार भिक्षुओंके सर तोडकर, जिनमें कि एक वृद्ध भिक्षु सर्वमंगल थे, चले गये।

जब यह वार्ता प्रसेनतक पहुंची, तब मात्र उसने एक निश्चय कर लिया। अपने कुछ साथीओंसे मिलकर वह बातचीत कर आया और रात होनेकी राह देखते रहा।

लुटेरे अब अधिक साहसी हो चुके थे। रातको वे मशालें लगाकर नगाडे बजाते हुवे आते, और बडी धूमधामके साथ अपने नृशंस अत्याचारोंके पदचिन्ह पीछे छोडकर वापस लौटा करते।

रात हो गई। प्रसेन भोजन समाप्त होनेपर शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज होकर चुपकेसे बाहर निकल पडा। मार्गमें उसके साथी उसे मिलते रहे। दिनभर गुप्त व्यक्तिगत प्रचार करके उन्होंने अपनी संख्या अच्छी तादादमें बढा ली थी।

अन्तमें यह तीस पैंतीस सशस्त्र युवकोंका गुट उस मार्गमें जाकर छिपकर बैठा, कि जिस बाजूसे लुटेरे प्रतिदिन आया करते थे।

रातके बारह बजे। लोग भीतियुक्त अन्तःकरणोंसे जग रहे थे। क्या पता कि कौन मुहल्ला लुटेरोंका भक्ष होता है? नगाडेकी ध्वनि सुनाई देने लगी। असहाय लोगोंने अपने अपने किवाड लगा लिये। अब उन्हें एक ईश्वरकाही सहारा था। मशालोंका उजाला दिखाई देने लगा। उस उजालेमें एक घरकी ओटमें अपने दो साथि-योंके साथ छिपकर बैठे हुवे प्रसेनने देखा कि डाकुओंकी संख्या चालीससे अधिक नहीं है। केवल आडंबरही अधिक होनेसे वह समूह प्रचण्ड मालूम हो रहा है।

दैवयोगसे लुटेरोंका वह दल उसी मुहल्लेमें आ पहुंचा जहां कि प्रसेन और उसके साथी बिखेरकर बैठे थे। सब लुटेरे विजयकी धुनमें मस्त होकर चिल्ला रहे थे। नगाडा बडे जोरसे बजते हुवे लोगोंके मनमें भय निर्माण कर रहा था। अबतकका लुटेरोंका अनुभव यह था कि कोई भी उनका मुकाबला करनेको न आता। प्रत्येक मनुष्य भगवान्

बुद्धका स्मरण करते हुवे आत्मसमर्पण कर देता। इसलिये असावध अवस्थामें वह दल आगे बढ रहा था।

एकदम एक सींग बज उठा, और प्रसेन तथा उसके साथी लुटेरोंके समूहपर टूट पडे। लुटेरोंके हाथोंमें मशालें थीं। उन्हींके उजालेमें प्रसेनके साथियोंने एकेक लुटेरेको भूमिशायी करना प्रारम्भ कर दिया। लुटेरे इस अचानक हमलेके कारण घबरा गये और भाग खडे हुवे। उनके दो चार अगुवे अन्ततक लडते रहे। परन्तु प्रसेनने तथा उसके साथियोंने उनका परलोकका मार्ग खुला कर दिया।

दूसरे दिन जब महासेन बौद्धविहारमें भिक्षु सर्वमंगलके पास जाकर प्रसेनका यह कृत्य कहते हुवे उसकी निन्दा करने लगे, तब सिरपर पट्टी बांधे हुवे सर्वमंगलने उस अपराधी बालकको क्षमा करनेके लिये भगवान् गौतमकी प्रार्थना की।

और जब प्रसेन उनका दर्शन करने गया, तब उन्होंने उसके लिये भगवान् शाक्यमुनिकी शरणमें जाते हुवे उसे कहा, " प्रसेन, बुद्धभिक्षु किसीके विषयमें निराश होना नहीं जानता। मुझे अब भी आशा है कि किसी न किसी दिन तुम भगवान् शाक्यमुनिके वचनोंपर विश्वास करोगे, और अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हो जाओगे। भगवान् शाक्यमुनि तुम्हें अवश्यही क्षमा करेंगे। "

× × ×

आगे चलकर भगवान् शाक्यमुनिने प्रसेनको क्षमा की या नहीं, तथा उसे निर्वाणपद मिला या नहीं, यह तो हम नहीं जानते। क्योंकि इतिहास-पोथी-पुस्तकोंमें इस बातका कहींपर भी उल्लेख नहीं है। परन्तु हां! इतना तो हमें अवश्य मालूम है कि उस दिनसे श्रीवर्धन लुटेरोंके भयसे मुक्त हुवा।

भगवान् श्रीकृष्णका अद्भुत दूतकर्म

(ले० प्रो० पं० गोपाल नीलकण्ठ दाण्डेकर, औंध)

भारतीय युद्ध एक असाधारण युद्ध था। बहुशः इतिहास जिन युद्धोंकी कथाएँ कहता है, वे युद्ध एक तो दो राष्ट्रोंमें अथवा दो भिन्नधर्मीय समाजोंमें हुवे हैं। युयुत्सु प्रवृत्ति प्रत्येक मनुष्यमें हुवाही करती है। किसीमें वह दबी हुई होती है, किसीमें प्रगट। प्रकृतिके अनुसार न्यूनाधिक कारण पातेही वह भडक उठती है, और फिर उसकी वशामें मत्त होगया हुवा मनुष्य बिना सोच विचार किये युद्धमें प्रवृत्त होता है। कई गतकालीन युद्ध ऐसे हैं कि ढूंढनेपर भी जिनका सयुक्तिक कारण मिल नहीं सकता। दूसरे कई युद्धोंका कारण केवल युयुत्सु प्रवृत्तिही नहीं किन्तु राजसिक बर्बरता है। केवल एक मनुष्यकी अधिकार-लालसा हजारों मानवोंकी मृत्युके लिये पर्याप्त और न्याय्य कारण नहीं हो सकता। परन्तु इतिहासको ऐसे कई युद्ध ज्ञात हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय युद्ध एक असाधारण युद्ध था। असाधारणका तात्पर्य यह है कि ऊपरी दृष्टिसे देखा जाय तो उस युद्धमें भाई-भाई, मामा-भतीजे, काका-भाँजे, गुरु और प्रिय शिष्य आपसमें लडे। यह लडना भी अजीबसा था। युद्ध शुरू होनेके पहले धर्मराज युधिष्ठिर कौरवोंकी सेनामें पैदल और निःशस्त्र अवस्थामें जाकर पूज्य भीष्म, द्रोण, शल्य आदिको प्रणाम करके उनकी मृत्युके उपाय पूछकर आगये! उन लोगोंने भी धर्मको आशीर्वाद देकर अपनी अपनी मृत्युके उपाय बता दिये। यह धर्मयुद्धकी पराकाष्ठा थी। सर्वसाक्षी कालने भी ऐसा युद्ध न देखा होगा।

फिर वह युद्ध हुवाही क्यों? अगर ये युद्धकर्ता लोग परस्परका इतना आदर करते थे, तब फिर भी आपसमें लडनेके लिये इन्हें ऐसा कोई सबल सयुक्तिक कारण उपलब्ध होना चाहिये था कि जिसके लिये लडना अनिवार्य हुवा होगा।

भारतीय युद्ध यह दो प्रवृत्तियोंमेंका युद्ध था। उस महायुद्धमें सत्प्रवृत्ति तथा असत्प्रवृत्ति आपसमें लड पडीं। विश्वका यह नियम है कि कभी न कभी असत्प्रवृत्ति और सत्प्रवृत्ति अपने सारे दल-बलके साथ जूंझती हैं, और उस युद्धमें बहुशः सत्प्रवृत्तिका विजय हो जाता है। कभी कभी असत्प्रवृत्तिका भी विजय हो गया ऐसा दिखाई देता है। परन्तु वह निर्णय अन्तिम नहीं होता। अन्तिम विजय तो सत्प्रवृत्तिकाही होता है। भारतीय युद्धमें भी वही हुवा। कई वर्षोंसे इस युद्धके कारण दोनों ओरसे इकट्ठे हो रहे थे। असत्प्रवृत्तिके दुराचारोंकी पराकाष्ठा हो चुकी थी। सत्प्रवृत्तिकी सहनशीलता चरमसीमातक पहुंच चुकी थी। अन्तमें दोनों प्रवृत्तियाँ आपसमें भिड गयीं, और सत्प्रवृत्तिका विजय हुवा। अतएव यह युद्ध अनिवार्य था।

इस युद्धके प्रारम्भकी कुछ घटनाएँ देखना बडाही बोधप्रद होगा। उन घटनाओंमें भगवान् श्रीकृष्णने किये हुवे दूतकर्मका स्थान अपूर्व है। जिस कुशलतासे उन्होंने यह कार्य किया, वह कुशलता निःसंशय प्रशंसनीय है। बडीही चातुरीसे, कोई पाण्डवोंके पक्षकी निन्दा न कर सके ऐसी युक्तिसे, तथा जो उपाय करनेसे कौरवोंका पक्ष निर्बल होगा, ऐसा उपाय करके श्रीकृष्णने यह अद्वितीय युद्ध करवाकर दुर्जनोंका नाश करवाया। श्रीकृष्ण स्वयं दूतकर्म करनेके लिये कौरवोंकी ओर गये।

कार्य अत्यन्त कठिन था। कौरव अपने प्रणपर अडे हुवे थे। किसी भी पाण्डव-पक्षीय व्यक्तिके विषयमें उनके मनमें अनुकूल भावना नहीं थी। ऐसी अवस्थामें उनकी सभामें जाकर उन्हें समझाना, साथही वहाँ एकत्रित हुवे हुवे राजाओंके मनमें पांडवोंके विषयमें सहानुभूति और कौरवोंके विषयमें अप्रीति निर्माण करना, हस्तिनापुरको जातेही अपने विषयमें अर्थात् पाण्डवपक्षके विषयमें प्रजाजनोंके अन्तःकरणोंमें भी अनुकूल भावना निर्माण करना, और इतना सब होनेपर दुष्टबुद्धि कौरवोंकी सभासे सकुशल वापस लौट आना, यह काम किसी सामान्य व्यक्तिसे

होना असंभव था। अतएव श्रीकृष्णजीने इस दुःसाध्य कार्यको करनेके लिये स्वयमेव आनेका निश्चय किया।

यह बात तो भी नहीं कि श्रीकृष्ण कौरवोंके स्वभावसे अनभिज्ञ थे। पाण्डवोंपर किये गये अत्याचारोंके द्वारा कौरवोंकी जो दुष्ट बुद्धि प्रगट होगयी थी, उसका पता भगवान् श्रीकृष्णजीको खूब अच्छी तरहसे था। वे जानते थे कि यह दूतकर्म कदापि सफल नहीं होगा। इन दोनों प्रवृत्तियोंमें होनेवाला संघर्ष अनिवार्य है। आज नहीं तो कुछ दिनोंके बाद यह संघर्ष अवश्यंभावी है। दुर्योधनको अपनी तथा कर्णकी शक्तिपर खूब भरोसा है। वह बिना युद्ध किये नहीं मानेगा।

फिर भी पाण्डवोंका पक्ष सर्वथा निर्दोष सिद्ध होना चाहिये। आगे चलकर कोई यह न कह सके कि पाण्डवोंकी यह अशुद्धि हुई। कौरव तथा पाण्डव ये दोनों श्रीकृष्णजीके संबंधी थे। पाण्डवोंके साथ, विशेषतः धनुर्धारी अर्जुनसे तो उनकी अतिघनिष्ठ मित्रता थी। यदि भाई भाई आपसमें लडनेपर उतारू होगये, तो फिर उनके हितका विचार करते हुये उन्हें उस युद्धसे परावृत्त करानेका प्रयत्न करना यह हितचिंतकका तथा मित्रका कर्तव्यही होता है। इस दृष्टिसे भी भगवान् श्रीकृष्णजीको आकर सन्धिका यत्न करना आवश्यक था। हमें यह देखना चाहिये कि यह सन्धिका प्रयत्न किस तरह किया गया।

अज्ञातवास समाप्त होनेके बाद अभिमन्यु-उत्तरा-विवाहके लिये चारों ओरके पाण्डवोंके हितैषी राजा इकट्ठे हुये। विवाह समाप्त होनेपर पाण्डवोंका राज्य उन्हें वापस मिलनेके विषयपर चर्चा छिड गई। विराट्, द्रुपद, सात्यकि, बलराम, पांचों पाण्डव, प्रद्युम्न, सांब, विराट्पुत्र इत्यादि वीर एकत्रित होकर विचार करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंके राज्यलोभके तथा अत्याचारोंके विषयमें अरुचि दर्शाते हुये कहा कि जो कुछ हो, किसी एक दूतको कौरवोंकी ओर भेजकर यह देखा जाय कि, क्या यह युद्ध-प्रसंग सामञ्जस्यसे सुलझ सकता है।

द्रुपदने इस दूत-प्रेषणकी योजनाके विषयमें अपनी असम्मति प्रकट की और कहा, 'कौरव किसी भी अवस्थामें न समझौता करेंगे, न राज्य वापस लौटा देंगे।'

न कस्याश्चिदवस्थायां राज्यं दास्यन्ति वै स्वयम् ॥ ८ ॥
(उद्योग. ६)

फिर भी एकबार प्रयत्न करनेकी दृष्टिसे उसने अपने पुरोहितको भेजनेका निश्चय करके उस प्रकार व्यवस्था की।

युद्ध अटल है, यह बात स्वयं श्रीकृष्णजीको भी मालूम थी। जब अर्जुन सहायता माँगनेके लिये द्वारका गया तब उन्होंने उसे कहा, कि 'कोई चिन्ता न करो। मैं स्वयं युद्धमें तुम्हारा सारथ्य करूंगा। तुम्हारी युद्धकामना पूर्ण हो जायगी।'

सारथ्यं ते करिष्यामि कामः सम्पद्यतां तव ॥ ३८ ॥
(उ० ७)

इस प्रतिज्ञासे यह बात स्वयमेव ज्ञात हो जाती है कि, उभय पक्ष युद्धकी सिद्धता करने लग चुके थे। समझौते की आशंका करनेके लिये भी कोई स्थान नहीं था।

इसके बाद धृतराष्ट्रने संजयको पाण्डवोंकी ओर भेजा। इस भावी युद्धके कारण जो अभूतपूर्व कुलक्षय होने वाला था, उसमें अधिकतर हानि धृतराष्ट्रपुत्रोंकीही होने वाली थी, इसलिये उस हानिसे बचनेके हेतुसे धृतराष्ट्रने संजयके द्वारा पाण्डवोंको समझानेका प्रयत्न किया। संजय-ने भी वह कार्य यथाशक्ति सम्पन्न किया। पाण्डवोंकी सभामें आकर उसने उनसे धृतराष्ट्रका सन्देश कहते हुवे कहा, "हे युधिष्ठिर! तुम धर्मज्ञ होकर भी इस कुलक्षय-कारी युद्धके लिये क्यों प्रवृत्त हुवे हो? इस युद्धसे तुम्हें क्या लाभ होगा? अपनेही गुरुजनोंकी हत्या कर राज्य-लाभ करनेकी बजाय यह कई गुना अधिक श्रेष्ठ है कि भीख मांगकर तुम अपना जीवन-निर्वाह करो।"

भैक्षचर्यामन्धकवृष्णिराज्ये श्रेयो मन्ये न तु युद्धेन राज्यम् ॥२॥
(उ० २७)

इसपर भगवान् श्रीकृष्णजीने जो उत्तर दिया उसमें उन्होंने युधिष्ठिरको सहनशीलताका प्रशस्तिपत्रही प्रदान किया है। उन्होंने कहा, 'युधिष्ठिरने आजतक जिस शान्तिसे तथा सहनशीलतासे व्यवहार किया वह और कहीं ढूंढने-पर भी अप्राप्य है।'

सुदुष्करस्तत्र शमो हि नूनं प्रदर्शितः सञ्जय पाण्डवेन ॥ ३
(उ० २९)

उन्होंने पाण्डवोंको दोष देनेवाले संजयकी निर्भर्त्सना भी की। वे बोले, 'तुम स्वयं धर्मको न जानते हुवे सभामें आकर पाण्डवोंको उपदेश करनेका अवडम्बर रच रहे हो।'

अबुद्धवा त्वं धर्ममेतं सभायां
अथेच्छसे पाण्डवस्योपदेष्टुम् ॥४१॥ (उ० २९)

'तिसपर भी केवल पाण्डवपक्षके हितकी ओर ध्यान देकर मैं फिरसे एक बार स्वयं कौरवोंके पास आकर संधिका यत्न करूंगा। तुम वे सब वाक्य जानतेही हो जो कि द्यूतसभामें कौरवोंके द्वारा पाण्डवोंको सुनाये गये थे। परन्तु मैं पाण्डवोंका हितचिन्तक हूं। अतः संधिप्रयत्न करना मेरा कर्तव्य है।'

जानासि त्वं सञ्जय सर्वमेतद् द्यूते वाक्यं गर्ह्यमेवं यथोक्तम्। स्वयं त्वहं प्रार्थये तत्र गन्तुं समाधातुं कार्यमेतद् विपन्नम् ॥ ४७ ॥ (उ. २९)

अब इसके बाद वह प्रसंग देखनेयोग्य है, जब कि श्रीकृष्णजीने सन्धिका यत्न करनेके लिये जानेका विचार युधिष्ठिरसे कहा। युधिष्ठिरने उनसे पूछा, 'हे मधुसूदन, इस प्रसंगमें हमें क्या करना चाहिये, क्या करनेसे धर्म तथा अर्थ हमसे दूर न हटने पावेंगे, वह युक्ति तुमही जानते हो। ऐसे कठिन समयपर आपको छोडकर दूसरा ऐसा कौन है जो मुझे उचित नीति कहेगा?'

तत्र किं मन्यसे कृष्ण प्राप्तकालमनन्तरम्।
कथमर्थाच्च धर्माच्च न हीयेम हि माधव ॥ ७६ ॥
ईदृशेऽसार्थकृच्छ्रेऽस्मिन् कमन्यं मधुसूदन।
उपसम्प्रष्टुमर्हामि त्वामृते मधुसूदन ॥ ७७ ॥
(उ. ७२)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले, 'तुम कोई चिन्ता न करो। मैं स्वयं कौरवोंकी ओर जाकर संधिका यत्न करूंगा।'

उभयोरेव वामर्थे यास्यामि कुरुसंसदम् ॥ ७९ ॥
(उ. ७२)

परन्तु युधिष्ठिरको यह योजना पसंद न आई। उन्होंने भगवान्से कहा, 'आपका कौरवोंकी ओर जाना मुझे नहीं जंचता। दुर्योधन आपकी एक भी बात न मानेगा। वह बडा हठीला है।'

न ममैतन्मतं कृष्ण यत्त्वं यायाः कुरून् प्रति।
सुयोधनः सूक्तमपि न करिष्यति ते वचः ॥ ८१ ॥
(उ. ७२)

परन्तु भगवान् बोले, 'तुम मेरे वहां जानेका मतलब नहीं समझे। मैं अच्छी तौरसे जानता हूं कि संधि न होगी। परन्तु मेरे वहाँ जानेसे एक लाभ तो अवश्य होगा। राजाओंके अपवादसे हम लोग मुक्त हो जावेंगे। यह प्रयत्न निरर्थक नहीं होगा। अगर हम सन्धि-प्रयत्नमें यशस्वी न भी हुवे तोभी जनापवादसे अवश्य छुटकारा पावेंगे। मैं तुम्हारा तथा उनका, दोनोंके अभिप्राय अच्छी तरह जानता हूं। मुझे ऐसा कोई भी उपाय दिखाई नहीं देता जिससे कि कौरव तुम लोगोंसे सन्धि करेंगे। फिर भी मैं वहां जाऊंगा। मेरे जानेसे जिन राजाओंके मनमें दुर्योधनके विषयमें अनुकूल भावना है, उनके संशयका निराकरण करनेमें मुझे अवश्य सफलता प्राप्त होगी। मैं वहां राजाओंकी सभामें तुम्हारे पुरुषार्थादि गुणोंका खूब वर्णन करूंगा, तथा दुर्योधनके दोष प्रकट करूंगा। धर्म तथा अर्थसे युक्त ऐसा मेरा भाषण सुनकर उन नाना देशाधिपति राजाओंका यह निश्चय हो जायगा कि तुम धर्मात्मा तथा सत्यवक्ता हो, और तुम्हारा प्रतिपक्षी दुर्योधन राज्यलोभी और अन्यायी है। वहाँ चारों वर्णोंके आबालवृद्ध नगरवासी तथा ग्रामवासी लोग इकट्ठे हो गये होंगे, उनके सामने भी मैं उसकी निन्दा करूंगा। सन्धिकी इच्छा करनेवाले तुमको तब कोई भी दोषी न कहेगा और सब लोग धृतराष्ट्र तथा कौरवोंकी ही निन्दा करेंगे। इस प्रकार सब लोगोंने दुर्योधनका त्याग करनेपर युद्धमें अवश्य उसका वध होगा। मैं वहाँ जाकर कौरवोंकी युद्धके लिये सिद्धता कहांतक है, यह भी देखकर आऊंगा। तुम्हें विजयप्राप्तिमें उस ज्ञानका अवश्य साहाय्य होगा। अब तुम मुझे रोकनेका यत्न न करो।

अवाच्यास्तु भविष्यामः सर्वलोके महीक्षिताम् ॥ ८५ ॥
न जातु गमनं पार्थ भवेत्तत्र निरर्थकम्।
अर्थप्राप्तिः कदाचित्स्यादन्ततो वाऽप्यवाच्यता ॥ ८८ ॥
(उ० ७२)

सर्वं जानाम्यभिप्रायं तेषां च भवतश्च यः ॥ १ ॥
न पर्यायोऽस्ति यत्साम्यं त्वयि कुर्युर्विशाम्पते ॥ ७ ॥

अहं तु सर्वलोकस्य गत्वा छेत्स्यामि संशयम्।
येषामस्ति द्विधा भावो राजन्दुर्योधनं प्रति ॥ २९ ॥
मध्ये राज्ञामहं तत्र प्रातिपौरुषिकान्गुणान्।
तव संकीर्तयिष्यामि ये च तस्य व्यतिक्रमाः ॥ ३० ॥
शृण्वतस्तव मे वाक्यं धर्मार्थसहितं हितम्।
निशम्य पार्थिवाः सर्वे नानाजनपदेश्वराः ॥ ३१ ॥
त्वयि सम्प्रतिपत्स्यन्ते धर्मात्मा सत्यवागिति।
तस्मिंश्चाधिगमिष्यन्ति यथा लोभादवर्तत ॥ ३२ ॥
गर्हयिष्यामि चैवेनं पौरजानपदेष्वपि।
वृद्धबालानुपादाय चातुर्वर्ण्ये समागते ॥ ३३ ॥
शमं वै याचमानस्त्वं नाधर्मं तत्र लप्स्यसे।
कुरून्विगर्हयिष्यन्ति धृतराष्ट्रं च पार्थिवाः ॥ ३४ ॥
तस्मिँल्लोकपरित्यक्ते किं कार्यमवशिष्यते।
हते दुर्योधने राजन्यदन्यत्क्रियतामिति ॥ ३५ ॥
कौरवाणां प्रवृत्तिं च गत्वा युद्धाधिकारिकाम्।
निशम्य विनिवर्तिष्ये जयाय तव भारत ॥ ३७ ॥

(उ० ७३)

और भी कुछ प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं, जिनसे कि भगवान्की युद्धेच्छा ज्ञात होगी। श्रीकृष्णजीको इस भाषणके बाद भीमने कहा, 'हे मधुसूदन, वहां जाकर तुम ऐसेही भाषण करो जिनसे कि कौरवोंके तप्त अन्तःकरण शान्त होंगे। युद्धकी सिद्धता दरसाकर उन्हें न डराओ। संभव है कि वैसा करनेसे सर्व भरतकुलका नाश हो जायगा।'

तथा यथैव शान्तिः स्यात्कुरूणां मधुसूदन।
तथा तथैव भाषेथा मा स्म युद्धेन भीषयेः ॥ ९ ॥
मा स्म नो भरता नशन्। ॥ १० ॥

(उ. ७४)

तिसपर भगवान् बोले, 'भीम, क्या ये वाक्य तुम्हारेही मुंहसे निकल रहे हैं? अचल अपना स्थान छोडकर चलने लग जाय, बस ठीक वैसेही भीमसेनको शोभा न देनेवाला यह भाषण तुमसे सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो रहा हूं।'

इदं मे महदाश्चर्यं पर्वतस्येव सर्पणम्।
यदीदृशं प्रभाषेथा भीमसेनाऽसमं वचः ॥ ११ ॥

(उ. ७५)

इसके बाद अर्जुनको युद्धविषयक आश्वासन देते हुये भगवान् बोले, 'पार्थ, तुम जानतेही हो कि दुष्प्रवृत्तिका निर्दालन करनेके लिये सत्प्रवृत्तिका आविर्भाव होना, यह परमोच्च दैवी नियम है। फिर शत्रुओंसे सन्धि कैसे होगी?'

यच्चापि परमं दिव्यं तच्चाप्यनुगतं त्वया।
विधानं विहितं पार्थ कथं शर्म भवेत्परैः ॥ १७ ॥

(उ. ७९)

द्रौपदीका सांत्वन करते हुये भी उन्होंने कहा, 'हे द्रौपदी, मैं तुम्हें प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं, कि तुम अपने आंसू पोछो। तुम शीघ्रही अपने पतियोंको शत्रुका नाश कर राज्याभिषिक्त हो गये हुये देखोगी।'

सत्यं ते प्रतिजानामि कृष्णे बाष्पो निगृह्यताम्।
हतामित्राञ्छ्रिया युक्तानचिराद् द्रक्ष्यसे पतीन् ॥ ४९ ॥

(उ. ८१)

श्रीकृष्ण भगवान्का हेतु दरसानेके लिये इतने प्रमाण पर्याप्त हैं। इनका सारांश—

१ सन्धि होना असंभवनीय है, यह श्रीकृष्ण अच्छी तौरसे जानते थे।

२ फिर भी दुर्योधन-पक्षमें एकत्रित हुवे हुवे राजाओंका मतपरिवर्तन करनेकी आवश्यकता थी।

३ इसका उपाय था, किसी सुयोग्य पुरुषने कौरव-सभामें जाकर पाण्डवोंकी स्तुति और दुर्योधनकी निन्दा करना।

४ राज्यान्तर्गत ग्रामवासी तथा नगरवासी लोगोंमें भी पाण्डवोंके विषयमें अनुकूल भावना निर्माण करना परमावश्यक था।

५ इस सन्धिके प्रयत्नसे पाण्डवपक्ष सज्जनों तथा दुर्जनोंके अपवादसे मुक्त हुआ।

६ कौरवोंकी युद्धसिद्धताकी जानकारी भी पाण्डवोंके लिये आवश्यक थी।

७ श्रीकृष्णजी उभयपक्षके संबंधी होनेसे उन दोनों पक्षोंके युद्धमें साक्षित्व करना उनका कर्तव्य था।

८ कौरवोंके नैतिक अधःपातको जनताके सामने प्रकट कर देना, तथा पाण्डवपक्षके बलके विषयमें कौरवपक्षीय

राजाओंके मनमें भय निर्माण करना, भी आवश्यक था।

इन सब कारणोंसे स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने सन्धिदूत बनकर जानेका निश्चित किया। अब यह देखना है कि उनका यत्न कहांतक सफल हुआ।

श्रीकृष्ण जब हस्तिनापुर पहुंचे, तब उन्हें देखनेके लिये असंख्य कुतूहलपूर्ण नागरिक हस्तिनापुरके बाहर आगये। भगवान् श्रीकृष्णका स्वागत करनेके लिये जनताने नगर कदलीपल्लवोंके द्वारा खूब सजाया था। चारों ओर मार्गोंपर संमार्जन कर वे मार्ग रंगवल्लिकाओंके द्वारा सुशोभित कर रखे थे। बडी उत्कण्ठासे ये लोग भगवान् श्रीकृष्णकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीकृष्णका स्वागत करनेके लिये कोई रथमें बैठकर, कोई अन्य वाहनोंपर, कोई पैदल, ऐसे अगणित लोग उपस्थित थे। आपका दर्शन करनेकी इच्छासे, स्त्री, वृद्ध, बाल आदि सभी हस्तिनापुरवासी मार्गपर उपस्थित थे। जब श्रीकृष्णका आगमन हुवा, तब वे सब लोग कृतकृत्य होकर भक्तिपूर्ण अन्तःकरणोंसे उनके स्तुतिस्तोत्र गाने लगे। तात्पर्य हस्तिनापूरमें प्रवेश करतेही श्रीकृष्णजीने वहां अपनेको अनुकूल वातावरण निर्माण किया।

पौराश्च बहुला राजन् हृषीकेशं दिदृक्षवः।
यानैर्बहुविधैरन्यैः पद्भिरेव तथा परे ॥ ४ ॥
कृष्णसम्माननार्थं च नगरं समलंकृतम्।
बभूव राजमार्गश्च बहुरत्नसमाचितः ॥ ६ ॥
न च कश्चिद्गृहे राजंस्तदाऽसीद्भरतर्षभ।
न स्त्री न वृद्धो न शिशुर्वासुदेवदिदृक्षया ॥ ७ ॥
राजमार्गे नरास्तस्मिन्संस्तुवन्त्यवनिं गताः।
तस्मिन्काले महाराज हृषीकेशप्रवेशने ॥ ८ ॥

(उ. ८९)

कौरवसभामें पहुंचतेही भगवान् श्रीकृष्णजीने बडा कुशलतापूर्ण कार्यारम्भ किया। वहां वे दुर्योधनेतर कौरवोंसे हंसी मजाक करते हुवे मित्रताके संबन्ध प्रस्थापित करने लगे, जिससे कि सभामें भी बहुतसे लोगोंके मनमें केशवके विषयमें अनुकूल भाव निर्माण हो गये।

कृतातिथ्यस्तु गोविन्दः सर्वानभिहसन्कुरून्।
आस्ते साम्बन्धिकं कुर्वन् कुरुभिः परिवारितः ॥ १० ॥

(उ. ८९)

फिर भी श्रीकृष्णका युद्धनिश्चय अटलही था। उन्होंने कुन्तीसे मिलकर कहा, 'तुम बहोतही शीघ्र अपने पुत्रोंको कृतार्थ, सर्व शत्रुगणका वध किये हुवे, राज्यश्रीसे युक्त, और सर्व पृथ्वीके शासनकर्ता हुवे हुवे देखोगी।

अरोगान्सर्वसिद्धार्थान्क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पाण्डवान्।
ईश्वरान्सर्वलोकस्य हतामित्राञ्छ्रियावृतान् ॥ ९९ ॥

(उ. ९०)

विदुरने श्रीकृष्णके आगमनके विषयमें असन्तोष प्रकट करनेपर उसे भी उन्होंने इसी आशयका उत्तर दिया। इस उत्तरमें उन्होंने अपने आगमनके और एक हेतुपर प्रकाश डाला है। विदुरने कहा 'प्रभो, संधि करवानेके लिये आपका हस्तिनापुर आना मुझे पसंद नहीं है।'

नेदं सम्यग्व्यवसितं केशवागमनं तव ॥ १ ॥

(उ. ९१)

तब श्रीकृष्ण बोले, 'विदुर, मेरे आगमनका हेतु ज्ञात होनेके बाद तुम निःशंक हो जाओगे। मैं भी जानता हूं, दुर्योधन मेरा कहना न मानेगा। न माने। फिर भी मुझे इतिकर्तव्यताका समाधान होगा, तथा मैं मित्रऋणसे मुक्त हो जाऊंगा। किसी एक कुलमें झगडा होनेपर जो मित्र सुलह करनेका यत्न नहीं करता, उसे विद्वान् लोक मित्र नहीं कहते। आगे चलकर अधर्मी, मूर्ख तथा विपक्षी कहीं ऐसा न कहें कि श्रीकृष्णने समर्थ होनेपर भी कौरव तथा पाण्डवोंमें सन्धि करवानेका यत्न नहीं किया। मैं तो उभय पक्षके कल्याणकी इच्छा करता हूं। इस प्रयत्नसे मैं लोकनिन्दासे मुक्त हो जाऊंगा।'

ज्ञातीनां हि मिथो भेदे यन्मित्रं नाभिपद्यते।
सर्वयत्नेन माध्यस्थ्यं न तन्मित्रं विदुर्बुधाः ॥ १५ ॥
न मां ब्रूयुरधर्मिष्ठा मूढा ह्यसुहृदस्तथा।
शक्तो नावारयत्कृष्णः संरब्धान्कुरुपाण्डवान् ॥ १६ ॥
तत्र यत्नमहं कृत्वा गच्छेयं नृष्ववाच्यताम् ॥ १७ ॥

(उ. ९३)

इसके बाद श्रीकृष्णजी कौरवसभामें उपस्थित हुवे। उन्होंने बडी कुशलतासे अपने भाषणको प्रारम्भ किया। उनकी एक एक बात विचार करनेयोग्य थी। अपना हेतु साध्य करनेके लिये उन्होंने प्रारम्भमेंही दुर्योधनपर वाक्प्रहार किया। वे बोले, 'धृतराष्ट्रजी, आप जानतेही है

कि आपके पुत्र, जिनमें कि दुर्योधन प्रमुख है, बडेही असभ्य, मर्यादाका त्याग किये हुवे, लोभके कारण नष्टबुद्धि, धर्म तथा अर्थको पैरोंतले कुचलनेवाले, अपने बडे भाइयोंसे दुष्ट व्यवहार करनेवाले हैं।'

ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः ।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत् ॥ ९ ॥
अशिष्टा गतमर्यादा लोभेन हृतचेतसः ।
स्वेषु बन्धुषु मुख्येषु तद्वेत्थ पुरुषर्षभ ॥ १० ॥

दुर्योधन धृतराष्ट्रका कहना मानता नहीं, यह जानते हुए भी उसे चिढानेके लिये धृतराष्ट्रको झूठाही बडप्पन देते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'धृतराष्ट्र, सलूख करना केवल तुम्हारे तथा मेरे आधीन है। तुम अपने पुत्रोंपर दबाव डालो, मैं पाण्डवोंको समझाता हूं।'

त्वय्यधीनः शमो राजन्मयि चैव विशाम्पते ।
पुत्रान्स्थापय कौरव्य स्थापयिष्याम्यहं परान् ॥ १३ ॥
(उ० ९५)

पाण्डवोंकी स्तुति करते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'यदि पाण्डव तुम्हारे रक्षणकर्ता हों, तो प्रत्यक्ष इन्द्र भी तुम्हारा पराभव नहीं कर सकता। फिर अन्य राजाओंकी क्या कथा!'

न हि त्वा पाण्डवैर्जेतुं रक्ष्यमाणं महात्मभिः ।
इन्द्रोऽपि देवैः सहितः प्रसहेत कुतो नृपाः ॥ १८ ॥
(उ० ९५)

इसके बाद धौंस बताकर पाण्डवोंके सामर्थ्यके विषयमें गर्व करते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'ऐसा कौन मूर्ख है जो कि पाण्डवोंसे युद्ध करेगा ?'

को नु तान्विपरीतात्मा युध्येत भरतर्षभ ॥ २१ ॥
(उ० ९५)

धृतराष्ट्रका अन्तःकरण और कमजोर करनेके हेतुसे श्रीकृष्ण बोले, 'हे धृतराष्ट्र! युद्धमें पाण्डव अथवा कौरव इनमेंके एक पक्षका नाश होनेके बाद तुम्हें कौन सुख मिलनेवाला है, सो मुझसे कहो।'

पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रैर्वापि महाबलैः ।
यद्विन्देथाः सुखं राजंस्तद्ब्रूहि भरतर्षभ ॥ २९ ॥
(उ० ९५)

श्रीकृष्णजीका धृतराष्ट्रको बडप्पन देना हेतुपूर्ण था। 'वे धृतराष्ट्रकोही महत्व दे रहे हैं, मुझे कुछ समझतेही नहीं' यह सोचकर दुर्योधन मनही मन रुष्ट हो रहा था। तथा इस बडाईके कारण धृतराष्ट्र प्रसन्न होकर युद्ध-निवृत्तिकी ओर झुक रहा था। इस रीतिसे कौरवपक्ष कमजोर रहा था। धृतराष्ट्रपर श्रीकृष्णकृत स्तुतिका असर हुवा यह बात सिद्ध करनेके लिये एकही प्रमाण पर्याप्त है कि आगे चलकर धृतराष्ट्रने दुर्योधनका मतपरिवर्तन करनेके लिये गांधारीको सभामें बुलवा लाकर उससे दुर्योधनको उपदेश करवाया था। अस्तु।

श्रीकृष्ण बोले, 'हे धृतराष्ट्र, इस राष्ट्रका संरक्षण करना अब तुम्हारेही हाथ है। कुछ ऐसा यत्न करो जिससे कि इन प्रजाओंका नाश न होने पाय। अगर तुमनेही योग्य विचार किया तो फिर सब कुछ ठीक हो जायगा।'

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात्कुरुनन्दन ॥ ३३ ॥
(उ० ९५)

अब राजाओंकी भी स्तुति करना आवश्यक था। ऐसा कौन है जो कि स्तुति सुननेपर प्रसन्न नहीं होगा? अत एव कौरवोंकी सहायता करनेके लिये जो राजा एकत्रित हुवे थे, उनकी स्तुति करते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'यहाँ इकट्ठे होगये हुवे ये नृपति शुद्ध अन्तःकरण वाले, उदार, अकार्यसे पीछे हटनेवाले, आर्य-वंशधर, कुलशीलवान् तथा परस्परके सहाय्यकर्ता हैं। हे धृतराष्ट्र, ये सब युद्धमें नष्ट हो जायेंगे। क्योंकि ये जीजानसे लडनेवाले हैं। तुम युद्ध टालकर इनके प्राणोंकी रक्षा कर सकते हो। ये भूपाल आनन्दसे परस्परको मिलें, परस्परके साथ प्रीतिभोजन करें, तथा सुंदर वस्त्र तथा मालाएं पहनकर सकुशल अपने अपने घर वापस लौटें।'

शुक्ला वदान्या ह्रीमन्त आर्याः पुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान्पाहि महतो भयात् ॥ ३४ ॥
शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ॥ ३५ ॥
(उ. ९५)

और भी राजाओंको ऊपर चढ़ानेके लिये उन्हें न्यायाधीश बनाते हुवे श्रीकृष्णने कहा, "हे जनाधिप धृतराष्ट्र, पाण्डवोंको राज्य देनेसे अन्य ऐसा कौन संदेश है जो तुम उनके लिये कह सकोगे! यह बात तो इतनी सरल है कि ये नृपति भी मान्य करेंगे। येही कहें कि इससे दूसरा न्याय क्या हो सकता है?"

शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये समासते ॥ ५१ ॥
(उ. ९५)

इसके बाद युधिष्ठिरका सौजन्य बतानेके हेतुसे श्रीकृष्ण बोले, 'देखो धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर कैसा सात्त्विक पुरुष है! तुम्हारे पुत्रोंने पाण्डवोंको जलानेके यत्न तथा नष्ट करनेके भी प्रयत्न किये। फिर भी कुलकी मर्यादा जानते हुवे युधिष्ठिरने मुझे तुम्हारेही पास भेजा है।'

दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ॥ ५६ ॥
(उ. ९५)

'अतएव तुम उससे न्याय करते हुवे उसका भाग वापस लौटा दो। दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है।'

श्रीकृष्णजीने यह जो कौशल्यपूर्ण वकीली की, उसका अत्यन्त इष्ट परिणाम हुवा। जिन राजाओंको वश करा लेनेके लिये श्रीकृष्णने उनकी स्तुति की उन राजाओंको श्रीकृष्णके वचन खूब भाये। वे उन वचनोंपर मनही मन खूब प्रसन्न हुवे।

तद्वाक्यं पार्थिवाः सर्वे हृदयैः समपूजयन्॥६३॥(उ.९५)

धृतराष्ट्रका भी वही हाल हुवा। भगवान्‌के स्तुतिवचनोंसे वह खूब प्रसन्न हुवा, और बोला, 'हे भगवान्! आप उचितही कहते हैं। आपने जो मार्ग बताया है वह स्वर्गप्राप्ति करा देनेवाला, इहलोकमें हितकारक, धर्मयुक्त तथा न्याय्यही है।'

स्वर्ग्यं लोक्यं च मामात्थ धर्म्यं न्याय्यं च केशव ॥ २ ॥

परन्तु फिर धृतराष्ट्रको स्मरण हुवा कि वास्तवमें उसके स्वाधीन कुछ नहीं है। इसलिये उसने श्रीकृष्णसे कहा, 'हे महाबाहु श्रीकृष्ण, आप कुछ उपदेशके शब्द इस दुष्टमति, क्रूर, दुष्टचित्त, मूर्ख तथा दुरात्मा दुर्योधनसेही कहिये।'

स एवं पापमतिं क्रूरं पापचित्तमचेतनम्।
अनुशाधि दुरात्मानं स्वयं दुर्योधनं सुपद् ॥६॥(उ.१२४)

श्रीकृष्ण जो चाहते थे वही हुवा। किसी प्रकारसे दुर्योधन रुष्ट होकर युद्ध घोषित करे, यही श्रीकृष्णकी इच्छा थी। उसके अनुसार दुर्योधनको रुष्ट करनेका कार्य धृतराष्ट्रनेही प्रारम्भ किया। उसीको आगे चलाते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'दुर्योधन, तुम यह कैसा व्यवहार कर रहे हो? ऐसा व्यवहार तो दुष्कुलोत्पन्न, दुष्टात्मा, क्रूर तथा निर्लज्ज लोकही किया करते हैं।'

दौष्कुलेया दुरात्मानो नृशंसा निरपत्रपाः ॥ १० ॥
त एतदीदृशं कुर्युर्यथा त्वं तात मन्यसे ॥११॥ (उ.१२४)

दुर्योधन-पक्षीय लोगोंके मनमें द्विधा भाव निर्माण करनेके लिये श्रीकृष्ण बोले, 'हे दुर्योधन, तुम पाण्डवोंसे सन्धि कर लो। यह बात हितकर होगी, तथा तुम्हारे पिता धृतराष्ट्र, पितामह भीष्म, द्रोण, महामति विदुर, कृप, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाल्हीक, अश्वत्थामा, विकर्ण, संजय, विविंशति, तथा तुम्हारे कई ज्ञातिबन्धु और मित्रगण इन सबकी इस कार्यको संमति है।'

सन्धत्स्व पुरुषव्याघ्र पाण्डवैर्भरतर्षभ।
तद्धितं च प्रियं चैव धृतराष्ट्रस्य धीमतः ॥ १६ ॥
पितामहस्य द्रोणस्य विदुरस्य महामतेः।
कृपस्य सोमदत्तस्य बाल्हीकस्य च धीमतः ॥ १७ ॥
अश्वत्थाम्नो विकर्णस्य सञ्जयस्य विविंशतेः।
ज्ञातीनां चैव भूयिष्ठं मित्राणां च परन्तप ॥ १८ ॥

सर्व कौरवपक्षीयोंका अपमान करनेके हेतुसे अर्जुनकी प्रशंसा करते हुवे श्रीकृष्ण बोले, 'अर्जुनका प्रताप क्या तुम लोग जानते नहीं? विराट् नगरमें उस अकेलेने तुम लोगोंका पराभव किया था, वह एकही उदाहरण पर्याप्त है। जिसने युद्ध करके साक्षात् भूतपति महादेवजीको प्रसन्न कर लिया था, उससे लडनेकी बात सोचनाही व्यर्थ है।'

तथा विराटनगरे श्रूयते महदद्भुतम्।
एकस्य च बहूनां च पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ५४ ॥
युद्धे येन महादेवः साक्षात्सन्तोषितः शिवः ॥ ५५ ॥
(उ. ११४)

इस उपदेशका परिणाम भी जो श्रीकृष्ण चाहते थे वही हुवा। दुर्योधन बोला, 'केशव, सुईकी नुक्कडपर जितनी मिट्टी समाती है उतनी भी बिना युद्ध किये पाण्डवोंको मिलेगी नहीं।'

यावद्धि तीक्ष्णया सूच्या विध्येदग्रेण केशव।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान्प्रति॥२५॥(उ.१२७)

इसपर और एक घटना हुई जिसका परिणाम कौरव-पक्षीय लोगोंके मनपर बहुतही हुआ। दुर्योधनने भगवान् श्रीकृष्णको प्रतिबंधमें रखनेका निश्चय किया। जब यह वार्ता श्रीकृष्णतक पहुंची तब श्रीकृष्ण बोले, 'धृतराष्ट्र, तुम्हारा पुत्र जो कुछ करना चाहता है, वह उसे करने दो।'

एष दुर्योधनो राजन्मथेच्छति तथास्तु तत् ॥ २९ ॥

(उ. १३०)

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण हंस पडे। हंसतेही श्रीकृष्णजीकी सुरक्षा करनेके लिये वहींसे सैकडों वीर उठकर खडे हुए जिससे उस भरी सभापर बडाही भयानक प्रभाव हुआ।

एवमुक्त्वा जहासोच्चैः केशवः परवीरहा ।
तस्य संस्मयतः शौरेर्विद्युद्रूपा महात्मनः ॥ ४ ॥
अङ्गुष्ठमात्रास्त्रिदशा मुमुचुः पावकार्चिषः ॥ ५ ॥
प्रादुरास्तां तथा दोर्भ्यां सङ्कर्षणधनञ्जयौ ॥ ८ ॥
भीमो युधिष्ठिरश्चैव माद्रीपुत्रौ च पृष्ठतः ।
अन्धका वृष्णयश्चैव प्रद्युम्नप्रमुखास्ततः ॥ ९ ॥
अग्रे बभूवुः कृष्णस्य समुद्यतमहायुधाः ।
शङ्खचक्रगदाशक्तिशार्ङ्गलाङ्गलनन्दकाः ॥ १० ॥
अदृश्यन्तोद्यतान्येव सर्वप्रहरणानि च ।
नाना बाहुषु कृष्णस्य दीप्यमानानि सर्वशः ॥ ११ ॥

(उ. १३१)

भगवान्‌का यह घोर रूप देखकर सब राजाओंने व्यथितान्तःकरणसे नेत्र बन्द कर लिये। उनके मनमें केशवके विषयमें भय पैदा हुआ।

तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ॥ १३ ॥
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः ॥ १४ ॥

(उ. १३१)

इस कृत्यका परिणाम अच्छाही हुआ। दुर्योधनकी सभामें एकत्रित हुवे सब राजाओंके मनमें यह बात जम गई कि अवश्य जय पाण्डवोंकीही होगी। श्रीकृष्ण जैसा अद्भुतरूपधारी महाशक्तिशाली पुरुष जिनकी ओर है, वे पाण्डवही जीतेंगे, और सर्व कौरवपक्ष नष्ट हो जायगा। कर्णने श्रीकृष्णसे जो कुछ कहा उसपरसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः तो कर्णही दुर्योधनका आधार था। परन्तु उसके भाषणसे दिखाई देता है कि वह अपने पक्षके पराभूत होनेके विषयमें निःशंक हो गया था।

जब श्रीकृष्ण कर्णसे मिलने गये तब उसने उनसे कहा, 'हे केशव, दुर्योधनके मतानुसार बर्तनेवाले ये राजा तथा राजपुत्र रणमें अवश्यही शस्त्ररूप अग्निसे दग्ध होकर यमसदन जावेंगे। हे श्रीकृष्ण ! तुम तथा पाण्डव दुर्योधनादि राजाओंका युद्धमें वध करोगे, इस विषयमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।'

राजानो राजपुत्राश्च दुर्योधनवशानुगाः ।
रणे शस्त्राग्निना दग्धाः प्राप्स्यन्ति यमसादनम् ॥ ५ ॥
यूयं सर्वे वधिष्यध्वं तत्र मे नास्ति संशयः ।
पार्थिवान्समरे कृष्ण दुर्योधनपुरोगमान् ॥ ३८ ॥

(उ. १४३)

इस कर्णके कथनसे हम इस निर्णयपर आ जाते हैं, कि अवश्यही श्रीकृष्णका दूतकर्म सफल हुआ। एक अत्यन्त कठिन कर्म श्रीकृष्णने सहजहीसे सुसंपन्न किया। स्वयं श्रीकृष्ण युधिष्ठिरसे कहते हैं। 'कुछ तो राजाओंकी निर्भर्त्सना की; दुर्योधनको कौडी कीमतका बना दिया। कर्णको वारंवार डर बताया। राजाओंकी जरासी स्तुति करके भेद-नीतिसे उन्हें अपने वश कर लिया। अद्भुत, घोर, दारुण, अमानुष ऐसे रूप दिखाकर उन लोगोंके अंतःकरणोंमें यह धारणा निर्माण कर दी कि अवश्यही पाण्डवोंकी विजय होगी।'

निर्भर्त्सयित्वा राज्ञस्तांस्तृणीकृत्य सुयोधनम् ।
राधेयं भीषयित्वा च सौबलं च पुनःपुनः ॥ ११ ॥
भेदयित्वा नृपान्सर्वान्वाग्भिर्मन्त्रेण चाऽसकृत् ॥ १३ ॥
अद्भुतानि च घोराणि दारुणानि च भारत ।
अमानुषाणि कर्माणि दर्शितानि मया विभो ॥ ११ ॥

(अ० १९०)

तात्पर्य श्रीकृष्णजीके इस दूतकर्मसे पाण्डवोंका पक्ष अधिकही बलवान् हुआ। तथा कौरवोंका पक्ष निर्बल सिद्ध हुआ। उनके पक्षके बहुसंख्य लोग यह मानने लगे कि पाण्डवोंका सत्पक्ष है, अतएव उन्हींकी विजय होगी।

और फिर केवल सात अक्षौहिणी सैन्यके द्वारा ग्यारह अक्षौहिणी सैन्यका नाश करके पाण्डवपक्ष अर्थात् सत्पक्ष विजयी हुआ। यही श्रीकृष्णजीके दूतकर्मकी विशेषता है।

वैदिक प्रकाश-चिकित्सा-प्रणाली

(ले०-डा. वा. वि. जोशी, M.B.B.S, मुंबई)

चित्रं देवानां उदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ (ऋ. १।११५।१)

इस ऋचामें सूर्यमें विद्यमान अद्भुत एवं लोकोत्तर सामर्थ्यका वास्तवपूर्ण तथा मनोहर चित्रण किया गया है। 'सूर्य प्रकाश क्या है, मानों भाँतिभाँतिकी विविधवर्णवाली किरणोंका (देवानां) सैन्यही है और (प्रमीतेः तारयिता-आयु बढानेवाला) मित्र, वरुण (पापान्निवारयति इति-पाप-दोष हटानेवाला) तथा अग्निका नेत्रस्वरूप (तेज प्रदान करनेवाला और राह दर्शानेवाला) है। आकाश, भूमि तथा अंतरिक्षको अपने तेजसे व्याप्त करनेवाला सूर्य भगवान् समूची चर एवं अचर सृष्टीकी आत्मा है.'' इस तरह इस मंत्रमें कहा गया है।

'Rejuvenation & life shortening habits' इस विषयपर डा० कोर्ट नामक एक विख्यात जर्मन लेखककी लिखी एक पुस्तक है, जिसमें प्रसिद्ध खगोल-शास्त्रज्ञ सर विलियम हर्शेलका मंतव्य दिया गया है, जिसके अनुसार ऐसा सिद्ध हो चुका है कि 'अर्वाचीन वैज्ञानिक गवेषणाओंसे इस बातका पता लगा है कि, पृथ्वीपर जितनी घटनाएँ तथा क्रियाएँ निष्पन्न हुआ करती हैं, वे सभी सूर्यसे मिलनेवाली शक्तिके कारणही कार्य करती हैं। उदा० (Rock-oil) या पैट्रोलियममें जो तीव्र जल उठनेकी और उससे विभिन्न कार्य पूर्ण करनेकी शक्ति दिखाई पडती है, वह भी अत्यन्त सुदूर अतीत कालमें सूर्यके प्रकाशके पृथ्वीपर आ जानेसेही अस्तित्वमें आ चुकी है'' इन सभी बातोंपर विचार करनेसे सब सूज्ञ पाठकोंको ज्ञात होगा कि 'सूर्य समूचे संसारकी आत्मा है' इस कथनमें कितना महान् सत्य छिपा पडा है। निस्सन्देह, वैज्ञानिक सत्यसिद्धान्तको अतीव मनोहारी एवं काव्यमय भाषामें व्यक्त करनेकी यह वैदिक शैली सुतरां देखने-योग्य है।

ऊपर लिखे हुए वर्णनसे जान पडता है कि वेदके समयमें निसर्गोपचार प्रणाली अस्तित्वमें थी। अर्वाचीन कालमें भी फिन्सेन, रोलियर, बर्नार्ड आदि पाश्चात्य अनुसन्धान कर्ताओंने प्राकृतिक चिकित्साप्रणाली और विशेष रूपसे प्रकाशद्वारा किए गए उपचारोंका महत्व सप्रयोग सिद्ध कर दिखाया है। उनके प्रयोगोंके फलस्वरूप, क्षयरोग जैसे भीषण रोगोंके संबंधमें दवाइयाँ लेनेकी अपेक्षा निसर्गोपचारही अधिक फलदायी है ऐसा लोग मानने लगे हैं। क्या प्राचीन, क्या आधुनिक युगमें प्राकृतिक चिकित्साका परिणाम तो एकरूपही होगा यह सुस्पष्ट है। इसलिए यदि हम प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रकृति-चिकित्सा-प्रणालियोंका तौलनिक अध्ययन शुरू कर दें तो निस्सन्देह नए आविष्कारोंके लिए वह एक अत्यन्त लाभप्रद बात होगी। इस लेखमें हम इतनाही बतलाना चाहते हैं कि आधुनिक तथा प्रयोगद्वारा प्रमाणित ऐसे कितनेही सिद्धान्त सौर सूक्तमें पाये जाते हैं। प्रथम यह देखना ठीक होगा कि वेदकालमें प्रकाशके घटकावयव तथा उनके गुणधर्म और वनस्पति, पशुपक्षी एवं मानवपर उनके प्रभावके संबंधमें कहाँतक निश्चित धारणा प्रचलित थी। क्योंकि उचित अवसरपर योग्य अनुपानमें प्रकाश-चिकित्सा करनेके लिए प्रकाशके विभिन्न घटकोंके गुणधर्म एवं परिणामकी यथावत् जानकारीकी बडी आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रकाशके सात घटक और उनकी विशेषताएँ

यदि काचमणि, लोलक या प्रिज्म (Prism) की सहायतासे सूर्य-किरणोंका पृथक्करण किया जाये तो सात प्रकारके विभिन्न वर्णवाले किरण उसमें पाये जाते हैं, जैसे १लाल, २पीला, ३हरा, ४नारिंगी, ५किरमिजी, ६अत्यन्त नील तथा ७ साधारण नील। सूर्य-प्रकाशके विश्लेषण करनेवालोंको यह विदितही है। श्वेत सूर्य-प्रकाशके अदृश्य घटक यद्यपि अनेक हैं तो भी दृश्य घटक केवल

सातही हैं। वेदमें स्थानस्थानपर वर्णन किया गया है कि सूर्यके 'रथ' को सात 'घोडे' जोडे जाते हैं और ये सात प्रकाशके द्रव्य घटकही ये घोडे हैं। जैसे 'देव' शब्द प्रकाशतत्त्व सूचित करनेके लिए किरणके लिए प्रयुक्त होता है, वैसेही 'अश्व, केतु' आदि शब्दोंसे, जो घोडेके पर्यायवाची शब्द हैं, किरणोंके प्रचण्ड वेगका दिग्दर्शन किया जाता है। निम्नलिखित ऋग्वेद-मंत्रसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक युगमें इन सात घटक तथा उनके विशिष्ट धर्मोंके बारेमें जानकारी लोगोंमें थी।

> भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनु-
> माद्यासः। नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि
> द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥ (ऋ. १।११५।३)

इस मंत्रमें 'अनुमाद्यासः' का अर्थ सायणभाष्यमें 'अनुक्रमेण स्तूयमानाः' ऐसा दिया है जिससे स्पष्ट है कि यहाँपर क्रमशः प्रकाश, घटक तथा उनके गुणधर्मोंका उल्लेख किया है।

(१) 'अश्वाः' शब्दसे ध्वनित होता है 'अत्यन्त वेगपूर्वक प्रयाण करनेवाले' और ऐसा कहा जा सकता है कि चूँकी इन किरणोंमें लाल तथा Infra Red किरणोंकी गति सबसे अधिक वेगवान् है अतः वेही यहाँपर उल्लेखनीय हैं।

(२) 'हरितः' का अर्थ है 'रसहरणशीलः' और रूढार्थ है फीका हरा या पीले तथा हरेका सम्मिश्रण। बर्नार्ड नामक एक आधुनिक वैज्ञानिकने सिद्ध किया है कि हरे या पीले किरण शरीर-पेशी (Cell) में प्रचलित रासायनिक क्रियामें अत्यन्त परिवर्तन कर डालते हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'हरितः' से पीले तथा हरे वर्णोंके 'रसहरणशीलत्व' का बोध होता है। हरेसे प्रारंभ कर साधारण नीलतकके किरण प्रभावके नाते अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, इसलिए—

(३) 'चित्राः' इस एकही शब्दमें उनका समावेश हुआ होगा।

(४) 'एतग्वाः' का अर्थ सायणभाष्यमें 'नीलवर्ण शबलवर्ण वा प्राप्नुवन्तः' किया है। इससे Violet तथा Ultra-violet किरण सूचित किये हैं। अतः निस्सन्देह कहा जा सकता है कि वेदकालमें प्रकाशके प्रमुख घटकों तथा उनके गुणधर्मोंको लोग जानते थे।

'एतश किरण' (Ultra violet rays)

'एतग्वा' तथा 'एतश' दोनों प्रायः समान अर्थवाले शब्द होंगे क्योंकि दोनोंमें 'एत' शब्द पाया जाता है। उपरिलिखित ऋचामें 'एत' शब्दका अर्थ सायणभाष्यानुसार 'शबलवर्ण अथवा नीलवर्ण' इस प्रकार किया है और इस ऋचाके प्रकाशघटकोंके अनुक्रमसेही आगे एक स्थानपर (५. ५. ७) 'हरितवर्ण' ऐसा अर्थ सायणभाष्यमें किया है पर वह ठीक नहीं जँचता है क्योंकि 'भद्राः अश्वाः' आदि ऋचाओंमें 'एतग्वाः' के अतिरिक्त 'हरितः' विभिन्न शब्द आही चुका है। इसलिए कहा जा सकता है कि दोनों शब्दोंका प्रायः एकही अर्थ नहीं हो सकता है। इससे स्पष्ट होगा कि 'एतश' का भी अर्थ किंचित् नीला ऐसाही अधिक उपयुक्त होगा।

कुर्आन्में सूर्योपासना

(लेखक— श्री. गणपतराव बा. गोरे, २१५८ मंगलवार पेठ, कोल्हापुर)

[फर्वरी १९५६ के अंकसे आगे]

(खंड ९)

[कुर्आनके अलम् शब्दके अर्थकी खोज– उसे तीन टूटे अक्षर (Abbreviations) अलिफ्, लाम्, मीम् मानते हुए। 'क' अक्षरमें अलिफ्, लाम्, मीम्का तुग्रा। अलम् तथा कः समानार्थक सूर्य वा अल्लाहके नाम हैं। भाषा विज्ञानसे भी कः नाम सूर्यका है।

स्वयं कुर्आनके भाष्यकार 'कः' वा अरबीके 'बडे काफ' को सूर्य सिद्ध करते हैं! (काफका अर्थ स्वयं मुसलमानोंने 'पैगम्बर' अल्लाह, जिब्रील= सूर्य किया है। पुनर्जन्म। काफ् वा सूर्यसे '१००' का संबंध। संस्कृत संख्या-लिपिमें कका मूल्य १ क्यों? 'काफ्' तथा 'क' में शेष-शायिन् विष्णु तथा सूर्यकी संहारक शक्ति 'शेषनाग' तथा 'शिवलिंग' के दर्शन) मुस्लिम विद्वान् काफ्के चक्करमें]

(१३) पूर्व परिचय

फर्वरीके अंकमें हमने धारा ११ में १२ प्रश्नोंद्वारा निम्न बातें सिद्ध की थीं:— १. अलम् एक पूर्ण शब्द है, पृथक् पृथक् तीन अक्षर नहीं। २. अलम् वेदका शब्द है। ३ अलम्का अर्थ सूर्य है। ४. यह शब्द कुर्आनकी छे सूरतों २, ३, २९, ३०, ३१ तथा ३२ की पहली आयत बना है, और इसका अर्थ सूर्य करते हुए हमने इसका संबंध सूरतोंके नाम अथवा शीर्षक तथा इसके पश्चात् आनेवाली आयतों २, ३, ४ आदिसे ठीक ठीक लगाकर दिखाया है। इस प्रकारकी सुसंगति आजतक किसीने भी नहीं लगाई है। ५. लेखके प्रारंभमेंही हमने कुर्आनके कई भाष्यकारोंका मत ऐसा भी बताया था कि अलम् एक शब्द नहीं है, अपितु ये तीन टूटे वा पृथक् पृथक् अक्षर हैं, जिन्हें अरबी भाषामें वे अलिफ्, लाम्, मीम् (अ, ल, म,) ऐसा उचारते हैं।

इस लेखमें हमें यही दर्शाना है कि तीन पृथक् अक्षर मानते हुए भी हम उसी परिणामपर पहुंचते हैं– कोई भेद नहीं आता!

अलिफ्, लाम्, मीम्का तुग्रा = क

प्रश्न १४— अलम्को ३ पृथक अक्षर माननेवालोंके जो मत आपने फर्वरीके अंकमें दिखाए हैं, वे तो परस्पर विभिन्न तथा एक दूसरेका खंडन करनेवाले भी हैं! फिर भला उनके आधारपर आप अलिफ्, लाम्, मीम्को किस प्रकार सूर्य सिद्ध कर सकेंगे?

उत्तर— अलिफ्, लाम्, मीम्के जो मनमाने तथा विसंगत अर्थ कुर्आनके भाष्यकारोंने किए हैं, इन्हें पढकर-ही एक बुद्धिमान् मनुष्य ताड जाता है कि यहां भी कोई वैदिक रहस्य छुपा हुआ है! ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मुस्लिम विद्वानोंने किसी ऐसे संस्कृतके चिन्ह अथवा अक्षर-को उक्त छे सूरतोंकी प्रथम आयतोंके स्थानपर लिखा हुआ पाया, जिसे वे समझ न सके, परन्तु जिसमें उन्हे अरबी भाषाके तीन अक्षर अलिफ्, मीम्, लाम् कुछ इस प्रकार आपसमें गुथे हुए प्रतीत होने लगे, जैसे कि आज-कल पाश्चात्य लोग अपने पूर्ण नामके तीन प्रथम अक्षरोंको एक दूसरेमें गुथाकर मोनोग्राम (Monogram) बनाते हैं।

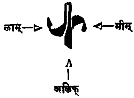
यह मोनोग्राम बनानेकी प्रथा मुसलमानोंमें भी आरंभ कालसे चलती आई है, जिसे फारसी भाषामें तुग्रा कहते हैं। मुसलमान बादशाह अपने नामोंके तुग्रे बनाकर उनकी मुहरें (Seals) बनाते थे, जोकि उनके हस्ताक्षरोंका काम दिया करती थीं। अतः उस संस्कृत अक्षरमें अलिफ्, लाम्, मीम्के दर्शन करके उसे एक तुग्रा समझ लेना मुसलमानोंके लिए सहजही था।

प्रश्न १५— ख्वाजा हसन निजामीका मत है कि " अलिफ्, लाम्, मीम्, अल्लाह और उसके रसूलके बीच रहस्य (राज) था "। इसका तो ऐसा अर्थ हुआ कि ह० मुहम्मद सा० इसके अर्थको जानते थे! फिर अक्ल क्या जान बूझकर उन्होंने मुसलमानोंको नहीं बतलाया?

उत्तर— अर्थका जानना, मुसलमानोंको सिखाना, और उनका उस अर्थको भुला देना सब कुछ संभव है। इसी प्रकार सिखानेका अवसर न मिलना भी संभव है।

प्रश्न १६— अच्छा तो बताइये कि संस्कृत वा वेदका वह कौनसा अद्भुत अक्षर है, जिसमें मुस्लिम विद्वानोंको अलिफ्, लाम्, मीम्के दर्शन होते हैं?

उत्तर— वह अक्षर वेदका कः या क है! ऋग्वेद १०।१२१ का देवता जिस प्रकार कः (प्रजापतिः) है,



ठीक उसी प्रकार कुर्आनकी २, ३, २९,३०,३१ तथा ३२ इन छे सूरतों-का देवता [Subject under discussion = प्रतिपादित विषय] भी कुर्आनकी सर्व प्रथम हस्त-लिखित पुस्तकमें कः था, ऐसा हमारा तर्क अलिफ्, लाम्, मीम्को तीन पृथक् परन्तु एक दूसरेमें गुथे हुए अक्षर मान लेनेपर लगता है। नकशेमें दिखाए कमें अलिफ्, लाम्, मीम्के दर्शन कीजिए!

१७ 'अलम्' तथा 'क' समानार्थक सूर्य वा अल्लाहके नाम हैं!

फर्वरीके अंकमें हमने अलम् तथा सूर्य वा अल्लाहको एक सिद्ध किया था। कः का अर्थ वेदनेही प्रजापति किया है, और प्रजापति सूर्यकाही दूसरा नाम है। अतः अब अलम् तथा क समानार्थक सिद्ध हुए। अतः कुर्आन-की प्रथम लिखित पुस्तकमें उक्त छे सूरतोंकी प्रथम आयत यदि वेदका शब्द अलम् थी, अथवा वेदका अक्षर क थी, दोनों अवस्थाओंमें प्रथम आयतका संबंध सूरतोंके नाम तथा पीछे आनेवाली आयतोंके साथ एकसा बना रहेगा! अब कः नाम अल्लाहका उक्त छे सूरतोंके प्रमाणसे भी सिद्ध हो रहा है, परन्तु इसपर अधिक विस्तारसे आगे विचार होनेवाला है।

पाठकोंको स्मरण रहे कि फर्वरीके अंकमें हमने दिखाया है कि ह० इब्ने अब्बासने अलिफ्, लाम्, मीम्को अल्लाह माना है। यही अर्थ हम कः का करते हैं, और कः को सूर्य समझते हैं!

१८ भाषा-विज्ञानसे भी 'कः' सूर्य है!

वेदकी भाषाही सृष्टि नियमोंके अनुसार बनी है, वही ईश्वरप्रदत्त आदिभाषा है। सिद्धान्त है कि निराकार परमात्मा चराचर जगत्को प्रकृतिसे रचकर उसमें व्यापक होकर वास कर रहा है। ठीक इसी सिद्धान्तके अनुसार आदि वैदिक भाषा भी परमात्माने बनाई।

अ अक्षर जिस प्रकार वैदिक वा संस्कृत वर्णमालाका प्रथम अक्षर है, उसी प्रकार वह इब्रानी भाषाका प्रथमाक्षर बना और वहां अलेफ [Aleph] अर्थात् बैल [Ox] भी इसलिए कहलाया कि यह अक्षर वर्णमालाका प्रथम अक्षर [Leader] है! जिस प्रकार गाडीमें जुता हुआ बैल अग्रणी है, गाडीको आगे ले जाता है ठकि उसी प्रकार अ अक्षर भी भाषाका अग्रणी अग्रगामी है! इसी प्रकार सूर्य भी सूर्यमण्डलके ९ ग्रहोंका अग्रणी है। इब्रानी भाषामें अ का अर्थ बैल वेदके आधारपरही किया गया है! यथाः—

उक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ॥ (ऋ० १०।३१।८)

अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत द्याम् ॥ (अ०४।११।१)

अर्थ— एक बैल है जो पृथिवी और चमकनेवाले पदार्थों [ग्रहों] को धारण कर रहा है।

यह बैल सूर्यही है! यही इब्रानीका अलेफ, यूनानी भाषामें अल्फा [Alpha] बना। पाश्चात्य ज्योतिष-शास्त्रमें राशिके मुख्य तारेको भी अल्फा कहते हैं, अर्थात् यहां भी इसका सूर्यसे संबंध आया! यही अ वा अलेफ, अरबी फारसी उर्दू वर्णमालाका भी प्रथमाक्षर बना. और यहां अलिफ् कहलाया! स्वयं 'अल्लाह' शब्दमें इसने प्रथम स्थान पाया। अल्लाहको जिन युक्तियों द्वारा हम आजतक सूर्य सिद्ध कर चुके हैं, उनमें इब्रानी भाषामें अलेफ्का अर्थ बैल होनेकी, तथा यूनानी भाषामें अल्फा नाम राशिके मुख्य तारे [सूर्य] का नाम होनेकी इन दो नवीन युक्ति-योंको भी स्थान देते हुए इनका समर्थन वेदके उक्त दो मंत्रोंसे करना चाहिए।

वाणीका विस्तार सूर्यसे हुआ है, इसीलिये वा० यजुर्वेद ३७।१८ में सूर्यका विश्वस्य वचसः पते [संसारकी वाणीका स्वामी] तथा सर्वस्य वचसः पते [समस्त वचनोंका स्वामी] कहा है । अतः अ का एक अर्थ सूर्य भी है ।

अ अक्षरका दूसरा अर्थ विष्णु = व्यापक भी है। निराकार अर्थात् अतिसूक्ष्म पदार्थही स्थूल पदार्थोंमें व्यापक होकर रह सकता है । इसीको स्वयंभूः [अपनी सत्तासे रहनेवाला], अथवा स्वर [स्व+र = अपनी सत्तासे सर्वत्र प्रकाशमान्, रमण करनेवाला] अथवा सर्वव्यापक कह सकते हैं । संस्कृत वर्णमालाके सभी स्वर अ के ही रूपान्तर हैं, तथा इ ई, उ ऊ, ए ऐ, ओ औ, ऋ ॠ, ऌ ॡ इस प्रकार भी लिखे जाते हैं ।

यह तो हुई स्वरोंमें अ रूपी विष्णुकी व्यापकता । इसी प्रकार वह व्यंजनोंमें भी व्यापक हो रहा है, अर्थात् ऐसा संस्कृत लिपिका कोई भी व्यंजन नहीं, जो अ स्वर बिना उच्चारा जाता हो ! च, ट, त, प, क, ह, सबमें अ व्यापक है ।

व्यंजन शब्द व्यञ्ज् धातुसे बना है, जिसका अर्थ है to reveal, manifest or show = अपनेको प्रकट करना या दिखाना । जिस प्रकार निराकार परमात्मा प्रकृतिका चोला ओढकर प्रकट होते हैं, ठीक उसी प्रकार संस्कृत लिपिमें अ स्वर भी व्यंजनोंमें व्यक्त अथवा व्यंजित हो रहा है ।

और जिस प्रकार निराकार परमात्मा प्रकृतिका चोला पहनकर सर्व प्रथम सूर्य या अग्निद्वारा प्रकट हुए, ठीक उसी प्रकार भाषामें अ रूपी व्यापक स्वर भी व्यंजन बनकर [प्राकृत रूपको धारण करके] सर्व प्रथम क अक्षरमेंही प्रकट हुआ, क्योंकि संस्कृत वर्णमालाका यही अग्रणी [leading] व्यंजन है ।

व्यंजन शब्दका अर्थ है 'किसी पदार्थके मेलसे बनी वस्तु' अंग्रेजीका पर्याय Consonant भी यही अर्थ रखता है, यथा-

CONSONANT- Alphabetical element other than VOWEL; Sound that in forming a syllable is combined with a vowel [Concise Oxford Dic.]

अब हमने भाषा-विज्ञानसे भी सिद्ध किया कि क वा सूर्य एक है !

कः अक्षरके ११ अर्थ आपटेके कोशमें दिए हैं, जो विस्तार-भयसे हम यहां लिखा नहीं सकते ।

यहांतक १९ वीं धाराकी १८ पोटधाराओंतक हमने सिद्ध किया कि कुर्आनकी २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ इन छे सूरतोंकी प्रथम आयत यदि वेदका अलम् शब्द समझा जाए अथवा अलिफ्, लाम्, मीम्के दर्शन वेदके क अक्षरमें किए जाएं, दोनों अवस्थाओंमें शीर्षक तथा आयतोंका पूर्वापार संबंध ठीक बना रहता है ! जो बात गत १३६५ वर्षोंमें कोई भी कुर्आनका भाष्यकार सिद्ध नहीं कर सका था, वह हमने दो विभिन्न प्रकारोंसे सिद्ध की है, और ऐसा करते हुए भी एकही परिणामपर पहुंचे हैं!! निस्सन्देह यह उसी सूर्यदेवकी कृपा है !

धारा २०:-कुर्आन्की ५० वीं सूरतपर विचार!

स्वयं कुर्आन्के भाष्यकार 'कः' वा अरबीके 'बडे काफ' को सूर्य सिद्ध करते हैं !!!

प्रश्न १-अलम्को एक शब्द मानकर, वा क में अलिफ्, लाम् मीम्को जानकर दोनोंको सूर्य सिद्ध करना, भाषा-विज्ञानसे अ को निराकार सर्वव्यापक आत्मा और क को साकार सूर्य सिद्ध करना वैदिक दृष्टिकोणसे ठीक है । यह भी संभव है कि उक्त ६ सूरतोंका प्रारंभिक शब्द आदि कुर्आनमें कः हो । परन्तु अरबी भाषामें तो दो प्रकारके क = काफ विद्यमान हैं- एक 'दो बिंदुओंवाला' वा बडा काफ और दूसरा 'छोटा काफ ।' अब आप अपने इस विचारको स्वयं कुर्आनद्वारा प्रमाणित करें कि वेदका क ही अरबीका काफ है, और यह तब सिद्ध होगा जब कि आप स्वयं कुर्आनसे सिद्ध करेंगे कि काफ का अर्थ अल्लाह वा सूर्य स्वयं मुस्लिम भाष्यकारोंने किया है ! इतना होनेपर आपका मन्तव्य स्वयं कुर्आनद्वारा परिपुष्ट होकर सन्देहरहित हो जायगा ।

उत्तर— पाठक यह जानकर आश्चर्य-चकित् रह जाएंगे कि जिस प्रकार सूरतों २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ में

प्रारंभिक शब्द अलम् या क है, ठीक उसी प्रकार ५० वीं सूरतका नामही काफ [अश्व = दो सूर्योंवाला] है! अर्थात् इस सूरतका नामही सूरते-काफ है। यही नहीं ५० वीं सूरतकी पहिली आयतका पहिला अक्षर भी काफ ही है !! यह आयत अरबीमें इस प्रकार है—

काफ व अल्कुर्आनिल्मजीदि ॥ ५० । १ ॥

इसका मौ० मुहम्मदअलीकृत अंग्रेजी अर्थ है—

Almighty God and the glorious Quran. (50:·1) हिन्दी अर्थ- सर्वशक्तिमान् अल्लाह और तेजस्वी कुर्आन ॥ ५० । १ ॥

मौलवीजीने फुट-नोट २३२३ काफ का अर्थ कादिर [प्रकृति या कुदरतवाला] किया है, जिसका आपने अंग्रेजी अर्थ Almighty किया है। इस प्रकार काफको स्वयं मौलवीजीनेही अल्लाह सिद्ध किया है! और अल्लाह नाम सूर्यकाही है, यह कईवार सिद्ध हो चुका है।

२. परन्तु कुर्आनको ह० मुहम्मद सा० तक जिब्रील [Gabriel = सूर्य] ने पहुंचाया, ऐसा मुसलमान मानते हैं! अतः ५०।१ का अर्थ "पैगंबरक जिब्रील तथा तेजस्वी कुर्आन" ऐसा करनेमें भी कोई आपत्ति नहीं आती। इस प्रकार अर्थ करनेसे भी काफ= सूर्य होगा।

पुनर्जन्म

३ वैदिक धर्ममें जीवके आवागमन, मुक्ति आदिका संबंध सूर्यसे माना गया है। मुसलमान पुनर्जीवनके सिद्धान्तको पुनरुत्थान समझते हैं। ५० वीं सूरतका शीर्षक तथा प्रतिपादित विषय पुनरुत्थानसे संबंध रखता है, ऐसा लिखकर मौलवीजीने अनजाने सिद्ध कर दिया है कि काफ = क: = सूर्यही है! आपके शब्द है-

The Title and Subject-Matter- This chapter, which is entitled the QAF, from its initial letter calling attention to the greatness of the power of the Divine Being, deals with the resurrection. ... ... In fact, the judgment of this life is inseparably mingled with the judgment of the next throughout this chapter.

अर्थ— शीर्षक तथा प्रतिपादित विषय- यह अध्याय जिसे काफ शीर्षक दिया गया है, अपने प्रथम

---

* काफ का अर्थ पैगंबर स्वयं मराठी भाषाके कुर्आन तथा डा० नजीर अहमदके उर्दू कुर्आनमें भी किया गया है। परन्तु यहां इन्होंने ह० मुहम्मद सा०को पैगंबर समझा है। ह० मूसा ई० सन १५७१ वर्ष पूर्व, ह० दानियल ई० सन १०५० वर्ष पूर्व, ह० जकरिया ई० सन ८४० वर्ष पूर्व ह० ईसा आजसे १९४६ वर्ष पूर्व, तथा ह० मुहम्मद ई० सन ५७० में उत्पन्न हुए थे और ये सब मनुष्य पैगम्बर कहलाए। परन्तु कुर्आन तथा बाइबल एक ऐसे अनश्वर पैगम्बरके अस्तित्वपर विश्वास रखते हैं, जोकि सनातन कालसे समय समयपर विभिन्न भाषाओंमें इन मानवी पैगम्बरोंको ईश्वरीय ज्ञान सिखाता आया है। उस शाश्वत पैगम्बर [देवदूत] के विषयमें मौ० मुहम्मदअली कुर्आनके फुट नोट ११८ में लिखते हैं—

" ...... जिब्रील वह देवदूत (Angel) है, जो कि ईश्वरीय संदेश उसके सेवकों [मानवी पैगम्बरों] तक पहुंचाता रहता है। इसे अरबीमें रुहुल् कुदुस् तथा अंग्रेजीमें Holy sprit वा Divine spirit भी कहते हैं। " इसेही मौलवीजीने ५० वीं सूरतमें Divine Being = देवपुरुष कहा है और इसेही हम सूर्य कहते हैं! यही सूर्य द्युलोकमें सूर्यरूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युतरूपसे और पृथिवीपर तथा प्राणियोंके शरीरोंमें अग्निरूपसे व्यापक हो रहा है। वैदिक धर्मके इस सिद्धान्तको मुसलमान नहीं समझ सकते यद्यपि स्वयं कुर्आन २०।९-२४, तथा २७।६-११ से सूर्य देव अल्लाह या जिब्रीलका अग्निमेंसे ह० मूसाके साथ बातें करना सिद्ध होता है!!! ह० मुहम्मद सा० इस बातको मानते थे। उक्त नोट ११८ में लिखा है कि ह० मुहम्मद सा० ने हसान बिन साबित्को कहा था कि "And the holy spirit is with yon" अर्थात् पवित्रात्मा [सूर्य अग्निरूपमें] तेरे साथ है। यही जिब्रील है।

अब स्वयं कुर्आनसे भी सिद्ध हुआ कि काफका अर्थ पैगम्बर जिब्रील = सूर्य या अग्नि भी हो सकता है।

अक्षरानुसार देवपुरुषकी महान् शक्तिकी ओर कबरको खींचते हुए पुनरुत्थानसे संबंध रखता है।...... सत्य तो यह है कि इहलोक [में किए गए कर्मों] का फल परलोकमें मिलनेवाली न्याय-व्यवस्थासे, इस सारे अध्यायमें कुछ ऐसा ओतप्रोत है कि पृथक् नहीं किया जा सकता। देवपुरुष = Divine Being = Divine Spirit जिब्रीलका नाम भी है।

पाठको! देव-पुरुषकी पुनर्जन्म वा पुनरुत्थानमें व्यापार करनेवाली शक्ति सूर्यही है! वही इहलोक तथा परलोकमें फल-प्रदाता है!! अतः काफ = कः = सूर्य = जिब्रील = अल्लाह सिद्ध होते हैं। फुटनोट ११८ में जिब्रीलको Divine Spirit तथा Holy Spirit कहा है!

प्रश्न— 'पुनरुत्थान' का अर्थ है 'प्रलयके दिन मृतकोंका कबरोंमेंसे शरीरसहित जी उठना'। उसी समय अल्लाह उनका न्याय करेंगे। क्या आप इसे पुनर्जन्मके सिद्धान्तसे व्यर्थही नहीं उलझा रहे?

उत्तर— हम नहीं स्वयं कुर्आनने उलझाया है। ७।१६६ में यहूदियोंको अल्लाहने बंदर बनाया, ऐसा लिखा है! यही तो पुनर्जन्म है!!

५० वीं सूरतका नाम काफ क्यों पड़ा, इसका एक और कारण मराठी कुर्आनने ऐसा बताया है कि काफ 'कद्क अम्र' का प्रथम अक्षर है इसलिए। इस अरबी वाक्यका अर्थ है- "आज्ञा हुई और नास्तिकोंकी विनाशका कार्य पूर्ण हुआ"।

कहिए साहेब! ये आज्ञाएं और विनाशएं पुनर्जन्मके सिद्धान्त अनुसार इसी सृष्टिमें प्रलयके पूर्वही प्रतिदिन मिल रही हैं वा नहीं? इस बातको मौ० मुहम्मदअलीजीने भी माना है और उसी फुट नोट २३२३ में अर्थ किया है-

The affair (meaning the DOOM) is decreed.

अर्थ— तबाही वा विनाशकी डिग्री मिल गई। नोटमें बताया है कि उक्त अर्थ इमाम फखरुद्दीन रजीके प्रमाणसे लिखी गई है।

अब पाठक सोचें कि क्या अल्लाह पुनर्जन्मके सिद्धान्तानुसारही जीवोंको इहलोकमेंही उनके कर्मोंका फल नहीं भुगवा रहे? फिर इस तबाहीकी डिग्रीको भुगतवानेवाला कौन? वही सूर्य जिसके द्वारा उत्पत्ति और विनाशका चक्र चलाया जा रहा है। अतः इस युक्तिद्वारा भी स्वयं मुसलमानोंने काफ = कः = सूर्य ऐसा सिद्ध किया!!

काफ वा सूर्यसे १०० का संबंध

प्रश्न ५— आप अपनी वैदिक धर्मकी तरंगमें बहते हुए अरबीके काफको सूर्य सिद्ध करते हैं, परन्तु हिसाबुल् जुम्मल्× के अनुसार अरबी विद्वानोंने इस बड़े काफका मूल्य १०० ठहराया है! अब बताइये कि बड़े काफका मूल्य १०० स्थिर करते समय भी क्या अरबी विद्वानोंने किसी वेदमंत्रका आश्रय लिया था?

उत्तर— जी हां! अरबीके बड़े काफका मूल्य 'हिसाबुल्-जुम्मल्' के बनानेवालेने १०० इसलिए नियत किया कि काफ = कः = सूर्यका हमारी १०० वर्षकी आयुसे घनिष्ठ संबंध है। वेदमें आया है कि यदि हम १०० शीतकाल वा शरद्ऋतु प्रतिदिन सूर्य-दर्शन करते रहें, तो हम १०० वर्षकी आयुको प्राप्त करें! *

संस्कृत संख्या-लिपिमें क का मूल्य १ क्यों?

प्रश्न ६— क्या 'हिसाबुल् जुम्मल्' अरबोंने हिन्दुओंसे सीखा था?

उत्तर— गणित, भूमिति, मापन, रचन [Arithmetic, Geometry, Measurement, Construction] ये सभी विद्याएं अरबोंने हिन्दुओंसे सीखी थीं! इसी कारण उन्होंने इन विद्याओंको एकही नाम इल्मुल् हिन्दसः दिया, जिसका अर्थ है हिन्दुओंसे सीखी हुई विद्या [अरबी-उर्दू डिक्शनरी].

× 'हिसाबुल् जुम्मल' को फारसी भाषामें हिसाबे अबजद [अलिफ्+बे+जीम्+दाल्] कहते हैं। अरबी वर्णमालाके अक्षरोंकी संख्याएं निश्चित की गई हैं। अतः अक्षरोंको परस्पर मिलाकर लिखनेसे भी संख्याका ज्ञान हो जाता है। अरबीका बड़ा काफ अंग्रेजीमें Q स्थानीय और छोटा काफ K स्थानीय है।

* पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ (वा. य. ३६।२४, ऋ. ७।६६।१६, अ. १९।६७।१-२)

रही बात हिसाबुल् जुम्मल्की, सो वह भी हिन्दुओंका आविष्कार है, जिसे संस्कृतमें संख्यालिपि कहते हैं। [देखो 'वैदिक धर्म' वर्ष १३, अंक ८ में श्री. पं. गोपाल पुरुषोत्तम जोशी द्वारा लिखित लेख ' वैदिक सूक्तोंकी गणनाके श्लोक '']

परंतु जहां अरबी विद्वानने एक वेद-मंत्रके आधारपर काफ़का मूल्य १०० स्थिर किया, वहां संस्कृतके ऋषिने दूसरे वेद-मंत्रके आधारपर क का मूल्य केवल १ स्थिर किया !× १०० का मूल एकही तो है !! और संस्कृत-लिपिमें व्यंजनों [स्वर = आत्मा + प्रकृति] के मिलापका पहिला अक्षर भी क है, और सृष्टि-रचनामें भी जिस स्थानपर सर्वप्रथम आत्मा तथा प्रकृतिका योग हुआ, वह सूर्यही है !! इसी सूर्यके अनेक नाम हैं।

'काफ' तथा 'क' में शेष-शायिन् विष्णु तथा सूर्यकी संहारक शक्ति शेषनाग तथा शिव-लिंगके दर्शन।

७ प्रश्न-आपने काफ़को कः=सूर्य मानकर उसका संबंध १०० वर्षोंके मानवी जीवनसे तो लगाया, परंतु आपने यह नहीं बताया कि सूर्यकी शिवरूपी मारक शक्तिसे ' काफ 'का संबंध किस प्रकार आया ?

उत्तर-सत्यार्थ-प्रकाशमें ऋषि दयानन्दने लिखा है 'यः शिष्यते स शेषः' अर्थात् जो उत्पत्ति और प्रलयसे बच रहा है वह शेष है। ऋषिने आकाशको भी प्रलयसे बचा हुआ समझा है, अतः आकाश भी शेष है। शेष [आकाश] पर विष्णु [सूर्य] शयन करते हैं, अतः उनके नाम हैं शेष-शायिन् तथा शेष-शयनः।

कुर्आनका समर्थन-अरबीमें बका का अर्थ है बचा = शेष[अरबी-उर्दू डिक्शनरी] कि भी वही है जो बाकी = शेषमें आती है। अरबीके बका तथा बाकी में जो क है वह अरबीका बड़ा या दो बिन्दुओंवाला क़ाफ़ ही है, इससे सिद्ध होता है कि संस्कृतका 'श' ही अरबीका बड़ा काफ = ق बना है ! आकार भेद भी अधिक नहीं प्रतीत होता।

कुर्आनके निम्न प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि अल्लाह आकाशरूपी सिंहासनपर विराजमान रहते हैं— २। २५५, २०।२६; ७।५४; १०।३; १३।२, २०।५; २५।५९; ३२।४; ५७।४। अब मुसलमानही बतावें कि क्या यह आकाशकी कुर्सीपर बैठनेवाला अल्लाह सूर्यही नहीं है ?

सिद्धान्त कौमुदी ३। १। ११४ के अनुसार सरति आकाशे स सूर्यः अर्थात् जो आकाशमें सर्पण करता या सर्पके समान मुड़ते हुए चलता है, सो सूर्य है। यह हुई सूर्य और सर्पकी समानता चलनेमें।

इसी सर्पको पुराणकारोंने [सहस्रशीर्षा पुरुषः। ऋ० १०। ९०। १ के प्रमाणसे] हजारों सिरोंवाला सांप समझा जोकि पृथिवीको अपने सिरोंपर [सूर्य = किरणोंपर] उठाए रहता है।

अब शेषके शः अक्षरका अर्थ है काटनेवाला,विनाशक दरान्ती [sickle; scythe], जोकि सभी शिवकी मारक शक्तिके नाम हैं। आर्य व्यंग-चित्रकारने सर्पोंकोही मारक शक्ति समझकर शिवके शरीरपर लिपटा दिया। 'श' की बनावटही ऐसी है मानो सांप फन निकाले डसनेको तैयार खड़ा हो ! अब विचित्रता देखिए कि अरबीका काफ भी ज़रा टेढ़ा करके देखनेसे 'श' की नकलही प्रतीत होगा ! अब हम यह भी कह सकते हैं कि संस्कृतके 'श' के कुछ एक भागको लेकरही अरबीके काफ़ का निर्माण हुआ। काफ़का आकार भी स्पष्टतया सांपकी फन तथा दरांती, दोनोंसे मिलता है।

× एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋ- १।१६४।४६) ॥ ऋषि- दीर्घतमा औचथ्यः। देवता- सूर्यः।

अर्थ-(विप्राः) विशेष ज्ञानी (एकं सत्) एक सद्वस्तु [सूर्य] को (बहुधा) अनेक प्रकारसे (वदन्ति) वर्णन करते हैं। इसी एकको अग्नि, यम वायु, कहते हैं ॥ ४६ ॥

[मंत्रके पूर्वभागमें इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण तथा गरुत्मान् ये छे नाम भी इसी सूर्यके बताए गए हैं। अतः कई विद्वानोंने जो 'एकं सत्'से निराकार परमात्माका बोध किया है, वह यदि मंत्रका अर्थ देवता-अनुसार किया जाए तो असत्य सिद्ध होता है।]

प्रश्न— पहिले आपने काफ को क सिद्ध किया, और साथही उसे 'क्ष' का विभाग भी सिद्ध कर रहे हैं, इसलिए कि काफमें पालक शक्तिके साथ मारक शक्तिकी विद्यमानता भी सिद्ध हो सके! यदि ऐसा है तो द्राविड प्राणायाम करने अर्थात् क्षमें मारक शक्ति दिखानेके स्थानमें सीधे कमेंही उसका दर्शन करा दीजिए?

उत्तर-यदि हमारा विचार सत्य है तो उलट पुलट कर जिस दृष्टिकोणसे देखोगे, परिणाम वही निकलेगा। आप क में जो जिनकी मारक शक्ति देखना चाहते हैं, तो वहां भी देख लीजिए! क में जो काना (=।) है वह शिवलिंगका चिन्ह है, और उसकी दोनों ओर दो सर्प एक ऊपरकी ओर और दूसरा नीचेकी ओर फन निकाले लिपटे हुए है!! अथवा यूं कहिए कि क रूपी इस शिवलिंगके चिन्हमें दो दराँतियां इस आयोजनासे लगाई गई हैं कि एक दराँती नीचे अर्थात् पृथिवीकी ओर मुख करके काट वा संहार कर रही है और दूसरी दराँती अन्तरिक्षकी ओर मुख करके विनाश कर रही है!! क अक्षरमें जितना विज्ञान भरा है, वह सब मिलकर क को सूर्यही सिद्ध कर रहा है, और यह सूर्य अपनी उत्पादक, पालक तथा मारक शक्तियोंको पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा द्यु इन तीनों लोकोंमें स्थिर किए हुए है।

यहांतक हमने नाना प्रकारसे विचार करके सिद्ध किया कि कुर्आनकी ५० वीं सूरतका नाम काफ इसलिए पड़ा कि 'काफ' का अर्थ है क = सूर्य! सारी सूरतमें पुनर्जन्म आदि सूर्य संबंधित-विषयोंका वर्णनही भरा होनेके कारण हमारे मतकी पुष्टि स्वयं कुर्आनसे होती है। इस ५० वीं सूरतपर विचार करनेके पश्चात् हमारे मतका झुकाव ऐसा हुआ है कि कुर्आनकी २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ इन छे सूरतोंके आरंभमें जो मुस्लिम विद्वानोंके कथनानुसार अलिफ्, लाम्, मीम् आया है वह भी संस्कृतका क अक्षरही था जिसमें [जैसा कि पूर्व दिखाया जा चुका है] मुद्रा [Monogram] के रूपमें आज भी अलिफ्, लाम्, मीम्के दर्शन होते हैं!

१३६५ वर्षोंके पश्चात् इन गुप्त भेदोंको खोलनेवाला भी यही काफ = कः = सूर्य = जिब्रील है, लेखक नहीं! सारे कुर्आनमें सूरतोंके आरंभमें आए हुए २९ ऐसे विचित्र शब्द हैं जिनके अर्थ आजतक किसी भी विद्वानपर प्रकाशित नहीं हुए हैं। इनमेंसे केवल ७ सूरतोंके प्रारंभिक शब्दोंके अर्थ वेदका आश्रय लेनेके कारण उक्त प्रकार खुले हैं, और इसी प्रकार आगे भी कई एक अर्थ खुलेंगे, ऐसी आशा है।

मुस्लिम विद्वान् काफके चक्करमें

पाठक वृन्द! इस अलिफ्, लाम्, मीम् वा काफके चक्करमें मुस्लिम विद्वान् बुरी तरह उलझे हुए है। एक भाष्यकारने काफको कोह काफ [Caucasus mountain] समझा है, और इसकी उपस्थिति पृथिवीके चारों ओर बताई है!! विषय मनोरंजक परंतु बडी ऊहापोहके पश्चात् खुलनेवाला है। यह लेख पहिलेही बढ गया है, अतः अगले लेखमेंही इसपर प्रकाश डालनेकी इच्छा है-अलम्!

वेदपरिचय

(भाग १-२-३)

१. "वेदपरिचय" परीक्षाके लिये ये पुस्तक तैयार किये हैं। ये ग्रन्थ इतने सुबोध, सुपाठ्य और आसान बनाए हैं कि इनसे अधिक सुबोध पाठविधि हो ही नहीं सकती। सर्वसाधारण स्त्रीपुरुष भी अपना थोडासा नियत समय इस कार्यके लिये प्रतिदिन देंगे, तो ४-५ वर्षोंमें वे वेदज्ञ हो सकते हैं। इन तीन भागोंमें ३०० मंत्र हैं।

इनमें मंत्र, उसके पद, अन्वय, अर्थ, प्रत्येक पदका अर्थ, भावार्थ, मन्त्रका बोध, प्रत्येक पदके विशेष अर्थ, मन्त्रके पाठभेद, उनका अर्थ इतना दिया है।

भाग१ मू० १॥) रु०, डा० व्यय ।≈); भाग २ (छप रहा है) मू० १॥) रु०, डा० व्यय ।≈), भाग ३ मू० १॥) रु०, डा० व्यय ।≈) २. वेदप्रवेश' परीक्षाकी पाठविधि, ५०० मंत्रोंकी पढाई, मू० ५) रु०, डा०व्य० ॥≈)

-मंत्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा) की हिंदी पुस्तकें ।

१ ऋग्वेद-संहिता	मू. ६)	डा.व्य. १।)
२ यजुर्वेद-संहिता	२॥)	॥)
३ सामवेद ”	३॥)	।॥)
४ अथर्ववेद ”	६)	१)
५ काण्व-संहिता	४)	॥=)
६ मैत्रायणी सं०	६)	१)
७ काठक सं०	६)	१)
८ तैत्तिरीय सं०	६)	१)
९ दैवत-संहिता १ म भाग	६)	१॥)
१० ,, ,, २ य भाग	६)	१॥)
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य		
१ मधुच्छन्दा ऋषिदर्शन	१)	।=)
२ मेधातिथि ,,	२)	॥=)
मरुद्देवता-(पदपाठ, अन्वय, अर्थ)		
१ मंत्र-संग्रह, समन्वय, मंत्रसूची, तथा हिंदी अनुवाद	मू. ७)	१॥)
२ मंत्र-संग्रह तथा हिंदी अनुवाद	५)	१)
३ हिंदी अनुवाद	४)	॥।)
४ मंत्रसमन्वय तथा मंत्रसूची	१)	॥)
संपूर्ण महाभारत	७५)	
महाभारतसमालोचना (१-२)	१॥)	॥)
संपूर्ण वाल्मीकि रामायण	३०)	६।)
भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)	१०)	१॥)
गीता-समन्वय	२)	॥)
,, श्लोकार्धसूची	॥=)	=)
गीताका राजकीय तत्त्वालोचन	१)	॥)
Bhagavad Gita	Rs. 15/-	
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।	२४)	४॥)
संस्कृतपाठमाला ।	७॥)	॥।=)
वै. यज्ञसंस्था भाग १	१)	।)
छूत और अछूत (१-२ भाग)	२)	॥)
योगसाधनमाला ।		
१ योगके आसन । (सचित्र)	२॥)	।=)
२ ब्रह्मचर्य ।	१॥)	।-)
३ योगसाधनकी तैयारी ।	१)	।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम	॥)	=)

देवतापरिचय-ग्रंथमाला		
१ रुद्रदेवतापरिचय	॥)	=)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता	॥=)	=)
३ देवताविचार	।)	-)
४ अग्निविद्या	२)	॥)
बालकधर्मशिक्षा		
१ भाग १ =) तथा भाग २ =)		=)
२ वैदिक पाठमाला प्रथम पुस्तक	।)	-)
आगमनिबंधमाला ।		
१ वैदिक राज्यपद्धति	।=)	-)
२ मानवी आयुष्य	।)	-)
३ वैदिक सभ्यता	।॥)	=)
४ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥=)	=)
५ वैदिक सर्पविद्या	॥=)	=)
६ शिवसंकल्पका विजय	॥=)	=)
७ वेदमें चर्खा	॥=)	=)
८ तर्कसे वेदका अर्थ	॥=)	=)
९ वेदमें रोगजंतुशास्त्र	।)	-)
१० वेदमें लोहेके कारखाने	॥)	-)
११ वेदमें कृषिविद्या	।)	-)
१२ ब्रह्मचर्यका विघ्न	=)	-)
१३ इंद्रशक्तिका विकास	॥।)	=)
उपनिषद्-माला ।		
१ ईशोपनिषद् १॥) २ केन उपनिषद् १॥)		।-)
१ वेदपरिचय- (परीक्षाकी पाठविधि)		
१ भाग १ ला	१॥)	॥)
२ ,, २ रा (समाप्त)	१॥)	॥)
३ ,, ३ रा	१॥)	॥)
२ वेदप्रवेश (परीक्षाकी पाठविधि)	५)	।॥)
१ गीता-लेखमाला ५ भाग	६)	१॥)
२ भारतमाता भगवद्गीता १ भाग	१)	।=)
५ सूर्य-नमस्कार	।॥)	=)
६ ऋगर्थ-दीपिका (पं. जयदेव शर्मा)	४)	॥)
शतपथबोधामृत	।=)	-)
अक्षरविज्ञान	१)	।=)
यजुर्वेद अ. ३६ शांतिका उपाय	॥)	=)

(८) नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥

(गीता, अ. ३, श्लो. ८)

अर्थ– हे अर्जुन ! (त्वम्) तू (नियतम्) अपने अधिकारके अनुसार फलकी आशा छोडकर शास्त्रविहित नित्य नैमित्तिक सन्ध्या युद्ध-व्यापार-सेवादि कर्मोंको (कुरु) कर। (हि) क्योंकि (अकर्मणः) कुछ काम न करनेसे (कर्म) कर्म करना (ज्यायः) अधिक श्रेष्ठ है। (च) तथा (अकर्मणः) कर्म न करनेसे (ते) तेरी (शरीरयात्रा) शरीरके व्यवहारोंका निर्वाह (अपि) भी (न) नहीं (प्रसिद्ध्येत्) सिद्ध हो सकता ॥ ८ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

कु॒र्वन्ने॒वेह कर्मा॑णि जिजीवि॒षेच्छ॒तꣳ समाः॑ ।
ए॒वं त्वयि॒ नान्यथे॒तो॑ऽस्ति॒ न कर्म॑ लिप्यते॒ नरे॑ ॥

(वा. य. ४०।२)

अर्थ– (इह) इस मनुष्य-जन्ममें अथवा संसारमें (कर्माणि) शास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक सन्ध्या-युद्ध-व्यापार-सेवादि कर्मोंको (कुर्वन्) करता हुआ (एव) हि (शतं समाः) सौ वर्षपर्यन्त अर्थात् समग्रायुपर्यन्त (जिजीविषेत्) जीनेकी इच्छा करे। (एवम्) ऐसे नियत नित्य नैमित्तिक कर्मोंके करनेसे (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्यमें (कर्म) वह किया कर्म और उसका फल जन्मादि रूपसे (न लिप्यते) बन्धनका कारण नहीं होता। (इतः) इस पूर्वोक्त प्रकारसे भिन्न मार्ग (अन्यथा) अन्य कोई प्रकार कर्ममें लिप्त न होनेके लिये (न) नहीं है। अर्थात् लौकिक फलभोग की अभिलाषासे कर्म करता हुआ तो लिप्त होताही है ॥

तथा गोभिल गृह्यसूत्रमें भी कहा है—

अथ य इमां सन्ध्यां नोपास्ते नाचष्टे न स जयति, ये तूपासते श्रोत्रियाः भवन्ति इत्युपनीताश्छेदनभोजनभेदनमैथुनस्वप्नस्वाध्याया-नाचरन्ति ये सन्ध्याकाले, ते श्वसूकरशृगाल-गर्दभसर्पयोनिष्वभिसम्पद्यमानास्तमोभिरभि-सम्पद्यन्ते । तस्मात् सायंप्रातःसन्ध्यामुपासीत ॥

अर्थ– जो प्राणी इस सन्ध्याकी उपासना नहीं करता, जो सन्ध्याके मंत्रोंको नहीं पढता, वह प्राणी अपने किसी कार्य जय-लाभ नहीं कर सकता। अर्थात् उसके अन्य किसी भी पुरुषार्थकी पूर्ति नहीं हो सकती और जो पुरुष सन्ध्यादि नित्य कर्मोंको करते हैं वह श्रोत्रिय होते हैं। क्योंकि जो सन्ध्याकालमें शास्त्रोक्त विहित कर्म नहीं करें, तो तो अन्य अकर्मोंके करनेमें उनका समय निरर्थक जाएगा। अतः जो पुरुष यज्ञोपवीत धारण करके सन्ध्याकालमें सन्ध्यादि कर्म छोडकर शास्त्रोंकी आज्ञाके प्रतिकूल छेदन, भेदन, भोजन, मैथुन, स्वप्न (निद्रा लेना), लिखना, पढना करते हैं, वे पुरुष कुत्ते, सूअर, गीदड, गद्धे, सर्पादि योनियोंमें उत्पन्न हुए हुए घोर अन्धकारसे घिरे हुए नरकोंको प्राप्त होते हैं। इसलिये मनुष्यके लिये आवश्यक है कि अपने नियत कर्मोंको अवश्य करता रहे ॥

तुलना— गीतामें नियत-कर्मोंका करना आवश्यक बताया, नियत कर्मोंके करनेके बगैरे शरीरनिर्वाह भी न हो सकेगा, ऐसा बताया है।

वेदमें भी जीवनपर्यंत नियत कर्मोंका करना आवश्यक बताया क्योंकि इन नियत कर्मोंके करनेके बिना मनुष्यके शरीरका निर्वाह नहीं हो सकता। इसी बातको गोभिल गृह्यसूत्रने भी सिद्ध किया है।

(९) यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर ॥

(गीता, अ. ३, श्लो. ९)

अर्थ– हे (कौन्तेय) हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! (यज्ञार्थात्) यज्ञ जो विष्णु उसकी आराधनाके लिये अथवा अग्निहोत्रादि यज्ञोंवाले (कर्मणः) कर्मसे (अन्यत्र) दूसरे प्रकारका कर्ममें (अयं लोकः) यह लोक (कर्म-बन्धनः) कर्मबन्धनही है अर्थात् बन्धनका कारण है। इसलिये (मुक्तसंगः) कर्मोंके फलोंके संगको त्याग करता हुआ (तदर्थम्) उस परमेश्वरकी आराधनाके लिये (कर्म) नियत और विहित कर्मको (समाचर) श्रद्धापूर्वक किया कर ॥९॥

वेदगीता (मंत्रः)

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि
प्र॒थ॒मान्या॑सन् । ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑
सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥

(वा. य. ३१।१६)

अर्थ– (देवाः) जो विद्वान् लोग (यज्ञेन) ज्ञानयज्ञसे अथवा अग्निहोत्रादि यज्ञोंसे (यज्ञम्) "यज्ञो वै विष्णुः" इस

भक्तिसे परमात्माको (अयजन्त) पूजन करते हैं अथवा अनुष्ठान करते अथवा सत्संगति करते हैं। (तानि) वे ईश्वरके पूजादि कर्म यद्वा नित्यनैमित्तिक संध्याग्निष्टोमादि (धर्माणि) धर्म, कर्म (प्रथमानि) अनादि रूपसे प्रवाहित हुए हुए उत्कृष्ट (आसन्) हैं। (ते) वे विद्वान् लोग (महिमानः) नियत नित्यनैमित्तिक कर्मोंके करनेसे महत्त्वको प्राप्त हुए हुए (नाकम्) मुक्तिधामके नित्य सुखको (सचन्त) प्राप्त होते हैं। (यत्र) जिस मुक्तिधामके सुखमें (पूर्वे) प्राचीन (साध्याः) साधनोंको किये हुए यद्वा विराडुपासक, यद्वा अहंग्रहोपासना करनेवाले यद्वा ज्ञान वा कर्मसे प्राप्य वस्तुको प्राप्त करनेवाले (देवाः) ज्ञानी पुरुष (सन्ति) वास करते हैं ॥१६॥

तथा चोपनिषद्—

पराचः कामानुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ (कठ. २।१।२)

अर्थ— सांसारिक कामनाओंमें बालबुद्धि अर्थात् मूर्ख पुरुष फंसकर, मृत्युके विस्तृत पाशमें फंसकर बारबार जन्म, मरण, जरा, रोगादिका दुःख सहते हैं। परन्तु जो धीर अर्थात् विवेकी पुरुष हैं, वे ब्रह्मज्ञान अमृतत्वको ध्रुव अर्थात् अटल सुख जानकर इस अध्रुव अर्थात् नश्वर संसारकी कामनाओंको नहीं चाहते।

तुलना— गीतामें यज्ञ-कर्मकी महिमा बताई है और याज्ञिक पुरुषको मुक्तिद्वारतक पहुंचाया है। वेदमें भी यज्ञकी महिमा, यज्ञसे मुक्तिकी प्राप्ति बताई है। उपनिषद्में भी सांसारिक कर्मोंको बन्धनका कारण और याज्ञिक कर्मोंसे मुक्ति बताई है।

(१०) सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥
(गीता, अ. ३, श्लो. १०)

अर्थ— (पुरा) सृष्टिरचनाके आदिमें अर्थात् कल्पके आरंभमें (प्रजापतिः) सृष्टिके रचनेवाले प्रजापतिने (सहयज्ञाः) नाना प्रकारके यज्ञोंके विधानोंके सहित अथवा जिसके साथ साथ यज्ञ उत्पन्न हुआ, ऐसी (प्रजाः) प्रजाओं अर्थात् ब्राह्मणादि वर्णोंको रचकर (उवाच) यह आज्ञा दी कि '(वः) तुम लोग (अनेन) इस (यज्ञेन) यज्ञसे अर्थात् अपने अपने वर्णाश्रमके विहित कर्मोंके सम्पादन करनेसे (प्रसविष्यध्वम्) अपनी सर्व प्रकारकी वृद्धि करो। (एषः) यही यज्ञ (वः) तुम लोगोंको (इष्टकामधुक्) तुम्हारे मनोवाञ्छित भोगका दोहनेवाला अर्थात् देनेवाला (अस्तु) होवे' ॥१०॥

वेदगीता (मंत्रः)

यज्ञो बभूव स आ बभूव स प्र जज्ञे स उ वावृधे पुनः। स देवानामधिपतिर्बभूव सो अस्मासु द्रविणमा दधातु ॥
(अथर्व० ७।५।२)

अर्थ— (यज्ञः बभूव) सृष्टिके आदिमें अर्थात् कल्पके आरंभमें यज्ञ प्रकट हुआ अर्थात् जब सृष्टि उत्पन्न हुई तब यज्ञ भी साथ उत्पन्न हुआ। (सः आ बभूव) तब वह यज्ञ हर जगह व्याप्त हो गया। (सः प्र जज्ञे) वह विशेष प्रकारसे ही सब प्रजाके लिये ज्ञानका साधन उत्पन्न हुआ। (सः उ) वहही यज्ञ (पुनः) फिर (वावृधे) वृद्धिको प्राप्त हुआ, (सः) वहही यज्ञ (देवानाम्) विद्वानों और ज्ञानी पुरुषोंका (अधिपतिः) अभीष्ट फलके देनेवाला (बभूव) बन गया, (सः) वह यज्ञ (अस्मासु) हममें (द्रविणम्) ज्ञानात्मक धनको (आ-दधातु) हममें धारण करावे ॥ २ ॥ (अथापि च मंत्रान्तरम्)

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥
(वा. य. ३१।१४)

अर्थ— (यत्) जिस कारण सृष्टिकी उत्पत्तिके साथही (देवाः) योगी और ज्ञानी लोगोंने (हविषा) हविःस्वरूप (पुरुषेण) परमात्मासे अर्थात् परमात्माकी संतुष्टि-निमित्तक (यज्ञम्) ज्ञानयज्ञ, हविर्यज्ञ, कर्मयज्ञादिको (अतन्वत) जगत्में विस्तारित करते रहे। यद्वा (देवाः) योगी लोग (हविषा) अमृतस्वरूप प्रकाशमान (पुरुषेण) आत्माके साथ (यज्ञम्) आत्मयज्ञको (अतन्वत) करते हैं। (अस्य) इस यज्ञका (वसन्तः) वसन्तर्तु अथवा सात्त्विक गुण (आज्यम्) घृतरूप अथवा ऊर्ध्वगतिरूप (आसीत्) है। (ग्रीष्मः) ग्रीष्मर्तु अथवा रजोगुण (इध्मः) संकर्षित्व अथवा प्रकाशक है। (शरत्) शरद् ऋतु अथवा

तमोगुण (हविः) हविःरूप है, क्योंकि योगी लोग आत्म-यज्ञमें तीनों गुणोंकाही हवन करते हैं ॥१४॥

तुलना— गीतामें यज्ञकी उत्पत्ति सृष्ट्युत्पत्तिके साथ साथ बताई है और वह यज्ञ सर्वहितकारी होता है, यह सिद्ध किया।

वेदमें सृष्टिके आदिमें यज्ञकी उत्पत्ति और फिर यज्ञका लोगोंमें विस्तृत होना और उस यज्ञसे मुक्तिरूपी धनकी प्रार्थना करना अर्थात् मुक्तिकी प्राप्ति सिद्ध की।

(११) देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥
(गीता, अ. ३. श्लो. ११)

अर्थ— देवानिति = प्रजापतिने कहा, 'हे प्रजाओ! तुम (अनेन) इस प्रकारके यज्ञसे अर्थात् यज्ञके हविष्य इत्यादिसे (देवान्) वायु, अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि देवताओंको (भावयत) प्रसन्न करो और (ते) वह (देवाः) देवतागण (वः) तुम लोगोंको (भावयन्तु) वृष्ट्यादि द्वारा अन्नादि प्रदान करके प्रसन्न करते रहें। इस प्रकार (परस्परम्) आपसमें एकदूसरेको (भावयन्तः) प्रसन्न करते हुए तुम (परं श्रेयः) परम कल्याण अर्थात् अपने परम प्रिय अभीष्ट फल मोक्ष तथा भगवत्स्वरूपको (अवाप्स्यथ) प्राप्त करोगे ॥११॥

वेदगीता (मंत्रः)

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यमरंकृतम्।
भूम्यां मनुष्या जीवन्ति स्वधयाऽन्नेन मर्त्याः ॥
(अथर्व. १२।१।२२)

अर्थ— (मनुष्याः) मनुष्य (भूम्याम्) पृथिवीपर वास करते हुए (अरंकृतम्) अलंकृत, सुसंस्कृत (हव्यम्) घृतादिकी आहुतिसे युक्त (यज्ञम्) पूजास्वरूपात्मक यज्ञको (देवेभ्यः) वायु, अग्नि, सूर्य, इन्द्रादि देवताओंको (ददति) देते हैं। इस तरह यज्ञादिके करनेसे (मर्त्याः) मृत्यु-धर्मवाले वेही मनुष्य (भूम्याम्) पृथिवीपर (स्वधया) अमृतरूप अथवा ब्रह्माण्डमात्रके प्राणियोंके आधारभूत (अन्नेन) वृष्ट्यादिसे उत्पन्न हुए हुए अन्न और खाने-पीनेकी वस्तुसे (जीवन्ति) जीवनको धारण करते हैं ॥२२॥

जैसे उपनिषद् (बृहदारण्यक. १।५।२) में कहा है—

यदहरेव जुहोति, तदहः पुनर्मृत्युं जयति।

अर्थ— जिस समय प्राणी हवन करता है और इन्द्र सूर्यादि देवताओंको प्रसन्न करता है, उस समयसेही अन्नादि अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्तिसे अपनी मृत्युको जीतता है अर्थात् दीर्घायु होकर मुक्तिकी प्राप्तिका अधिकारी होता है। तथा च इसी श्रुति में ही कहा है

देवान्भाजयदिति हुतं च प्रहुतं च।

अर्थ— प्रजापतिने दो प्रकारके अन्नोंको देवताओंमें विभक्त किया। एक हुत अर्थात् अग्निमें हवन और दूसरा प्रहुत अर्थात् बलिहरणद्वारा पृथिवीके जीवोंको प्रसन्न करता है। इनमें एक आधिदैविक कहा जाता है और दूसरा आध्यात्मिक कहा जाता है। इन दोनों प्रकारके यज्ञोंसे देवता और मनुष्योंमें परस्पर भाव बने रहनेसे सबके सब परम कल्याणको प्राप्त होते हैं।

तुलना— गीतामें यज्ञद्वारा देवताओंका प्रसन्न करना, उनका प्रसन्न होकर मनुष्योंको अन्नादि द्वारा सुख पहुंचाना बताया है।

वेदमें भी मनुष्य भूमिपर वास करते हुए यज्ञोंसे देवताओंको प्रसन्न करते हैं और वह देवता उन्हें वृष्टिद्वारा अन्नादिसे तृप्त करते हैं। उपनिषद्में भी यही बात सिद्ध की गई है।

(१२) इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥
(गीता, अ. ३. श्लो १२)

अर्थ— हे अर्जुन! (हि) निश्चयसे या जिस कारण (यज्ञभाविताः) तुम्हारे श्रुतिस्मृतिविहित, दर्श, पौर्णमास तथा नाना प्रकारके यज्ञोंसे संतुष्ट हुए हुए (देवाः) वायु, सूर्य, अग्नि, चंद्रादि देवता (वः) तुम्हें अर्थात् यज्ञ करनेवालोंको (इष्टान्) मनोवांछित (भोगान्) पदार्थोंको (दास्यन्ते) विना मांगेही देवेंगे। (तैः दत्तान्) उनसे दिये हुए पदार्थोंको (एभ्यः) इन देवोंके निमित्त (अप्रदाय) न देकर अर्थात् उनसे उऋण न होकर (यः) जो प्राणी (भुंक्ते) अपने स्वार्थवश आपही भोगता है, (सः) वह (स्तेनः) देवादिके भागोंको चुराने-वाला (स्तेनः) चोर (एव) ही है ॥१२॥

वेदगीता (मंत्रः)

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः । अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥

(ऋ. १०।११७।४)

अर्थ– (यः) जो पुरुष (सचाभुवे) सर्वदा साथ रहनेवाले (सख्ये) समान भावमें मित्ररूपसे रहिनेवाले इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु आदि देवताओंको (पित्वः) चरु-पुरोडाशादि अन्नोंको (न) नहीं (ददाति) देता, (सः) वह पुरुष (सखा) इस जगत्में मित्ररूप (न) नहीं हो सकता । (अस्मात्) इन्द्रादि इष्टमित्रोंको न देनेवाले इस पुरुषसे (अप + प्रेयात्) परस्पर एक-दूसरेको देकर प्रसन्न करनेवाला वह उस अदानी पुरुषसे हटकर रहे । ऐसे पुरुषका (ओकः) कोई वास-स्थान या विश्रामस्थान (न) नहीं (अस्ति तत्) है । इसलिये दानी पुरुष चोर न बने, प्रत्युत (पृणन्तम्) पुरोडाशादि हविको देते हुए (अन्यम्) दूसरे (अरणम्) स्वामीको सदा कलहादिसे रहितको (चित्) ही (इच्छेत्) कामना करे–

उपनिषद्में भी कहा है—

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च । अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥

(मुण्डक. १।२।३)

अर्थ— जिस पुरुषका दर्श अर्थात् अमावस्याके दिन, पौर्णमास अर्थात् पूर्णमाके दिन चातुर्मास्य अर्थात् आषाढ शुक्लैकादशीसे लेकर कार्तिक शुक्ल पूर्णमा यावत् चातुर्मास्य कहा जाते हैं । इन दिनोंमें, अग्रयण अर्थात् अग्रहणमासमें व्रतादि करनेको अग्रयण कहते हैं, इनमें अग्निहोत्र नहीं करता, और नही आतिथि सेवा करता है । नहीं कभी हवन करता है और नहीं वैश्वदेव बलि देता है । जो कभी संयोगवशात् हवन कर भी देता है, तो उन्मनस्क होकर विधिरहित करता है । तो ऐसे प्राणीके सातों लोकोंके सुख नाश हो जाते हैं । अथवा सप्त-लोकसे सप्त पीढीका भी ग्रहण होता है । जैसे ऊपर तीन पीढीवाले पिता, पितामह, प्रपितामह और तीन पीढी नीचे की पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र और सातवां स्वयं इन सबके कर्मोंका नाश हो जाता है, जिससे यह सब अधोगतिको जाते हैं ।

तुलना– गीतामें देवोंको हविरादिसे प्रसन्न करना, उसके बदले वृष्टयादि द्वारा उनका अन्नादिका दान देना आवश्यक, जो उन देवोंको यज्ञादि द्वारा कुछ नहीं देता, प्रत्युत उनका भाग स्वयं खा जाता है, वह चोरही है ऐसा कहा है ।

वेदमें भी अपनेमें समानता रखनेवाले मित्रको दान न देनेवालेको नीच मित्र कहा । बल्कि उससे पृथक् रहनेकी आज्ञा दी है । और जो अपनी उन्नति चाहता है वह हविरादि द्वारा उन देवताओंको प्रसन्न करे ॥ १२ ॥

**(१३) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥**

(गीता, अ. ३, श्लो० १३)

अर्थ– (यज्ञशिष्टाशिनः) वैश्वदेवादि यज्ञोंके अवशिष्ट भागको सेवन करनेवाले (सन्तः) शिष्ट पुरुष (सर्व किल्बिषैः) सब प्रकारके पापोंसे अर्थात् कण्डणी, पेषणी, चुल्ली, उदकुम्भी, मार्जनी, आदि पांच पापोंसे भी (मुच्यन्ते) छूट जाते हैं और (ये) जो पुरुष यज्ञ न करनेवाले (पापाः) पापात्मा, आचारहीन पुरुष केवल (आत्मकारणात्) अपनेही पेट भरनेके लिये (पचन्ति) भोजन तैयार करते हैं, (ते) वे दुराचारी (तु) तो निश्चय करके (अघम्) पापकोही (भुञ्जते) भक्षण करते हैं ॥ १३ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

मोघमन्नं विन्दते[1] अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य । नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी[2] ॥

(ऋ. १०।११७,६, तै. ब्रा. २,८,८,३;निरुक्त. ७,३)

अर्थ– (अप्रचेताः) मूर्ख, दान न देनेवाला, पापी (मोघम्) व्यर्थही (अन्नम्) अन्नको (विन्दते) पाता है । (सत्यम्) मैं तुम्हें सत्य अर्थात् कभी न बदलनेवाली बातको

---

१ विन्दते = विद्लृ लाभे तौदादिकः "शेमुचादीनाम्" इति नुमागमः । २ केवलादी - अदेः सुप्यजातौ" इति णिनिः । अतः उपधालक्षणा वृद्धिः ।

(ब्रवीमि) कहता हूं। वह अन्न केवल पापात्मक या व्यर्थ नहीं होता, प्रत्युत उस अन्नका खाना (तस्य) उस पुरुषकी (सः) वह (वधः) मृत्यु (इत्) ही है। जो पापी पुरुष (अर्यमणम्) इन्द्र, वायु, अग्नि आदि नियामक देवोंको हविके देनेसे (न पुष्यति) न पालता है और नहीं प्रसन्न करता है (नो) और नहीं (सखायम्) अतिथि तथा मित्र-वर्गको (न पुष्यति) न पालता है और नहीं प्रसन्न करता है। इसलिये वह (केवलादी) देव, पितर और ब्राह्मण, अतिथि आदिको न देकर केवल अपने आप खानेवाला पुरुष (केवलाघः भवति) केवल पापोंकोही खानेवाला होता है ॥१॥

(मंत्रान्तरम्)

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥ २ ॥

(ऋ. १०।११७।३)

अर्थ- (स इत्) वह पुरुषही (भोजः) दानी है। (यः) जो पुरुष (अन्नकामाय) अन्नकी कामनाके लिये (चरते) घर-घर फिरनेवाले (कृशाय) अन्नके न मिलनेसे और अपनी दरिद्रताके कारण दुर्बल हुए हुए (गृहवे) घरमें आए हुए अतिथिको (ददाति) अन्नको देता है। (यामहूतौ) उस अतिथि-यज्ञमें (अस्मै) इस दानी पुरुषको फल (अरम्) पर्याप्त (भवति) होता है। (उत) और वह दानी पुरुष (अपरीषु) दूसरे लोगोंमें भी (सखायम्) सखाभावको (कृणुते) करता है अर्थात् सब लोग उसके मित्रही हो जाते है, शत्रु कोई नहीं होता ॥२॥

जैसे उपनिषद्‌में भी कहा है—

यत्सप्तान्नानि मेधया तपसाऽजनयत्पितेति मेधया हि तपसाऽजनयत् पितैकमस्य साधारणमितीदमेवास्य तत्साधारणमन्नं यदिदमद्यते स य एतदुपास्ते न स पाप्मनो व्यावर्तते मिश्रं ह्येतत्। (बृहदा. १,५,२)

अर्थ- पिता अर्थात् प्रजापतिने सात प्रकारके अन्न अपनी मेधा अर्थात् सर्जनबुद्धि और तपसे उत्पन्न किये। इनमें वह अन्न साधारण अन्न कहा जाता है, जिसे सब प्राणिमात्र भोजन करते हैं। जो प्राणी इसकी उपासना करते हैं अर्थात् अन्नमय यज्ञ करते हैं, वे पापमें लिप्त नहीं होते। क्योंकि (मिश्रं हि एतत्) यह साधारण अन्न मिश्र है। मिश्र इसलिये कहा जाता है कि सब प्राणियोंकी क्षुधाकी शान्तिनिमित्त बनाया गया है। अतएव बलि, वैश्वदेव तथा अतिथिसत्कार करना धर्म है। ऐसा करनेवाला सब पापोंसे छूट जाता है।

तुलना— गीतामें यज्ञशेषके भोजनकी आज्ञा और निष्पाप होना सिद्ध किया है। अपने आप अकेला भोजन करनेवालेको पापी कहा है।

वेदमें भी यज्ञादि तथा अतिथि प्रभृतिको न देकर स्वयं अकेला भोजन खाना पापका भोजन करनाही कहा है। उपनिषद्‌में भी सबके साथ बांटकर अन्न खाना चाहिये, ऐसा सिद्ध किया है।

**(१४) अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥**

(गीता, अ. ३, श्लो. १४)

अर्थ- (भूतानि) चौरासी लाख योनियों तथा वृक्षादिकोंके शरीर (अन्नात् भवन्ति) अन्नसे उत्पन्न होते हैं, (पर्जन्यात्) वर्षासे (अन्नसमुद्भवः) अन्नकी उत्पत्ति होती है। (पर्जन्यः) मेघ अर्थात् वर्षा (यज्ञात्) यज्ञसे (भवति) होती है (यज्ञः) यज्ञ (कर्मसमुद्भवः) ऋत्विज् और यजमानके कर्मोंसे उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

**यज्ञ इन्द्रमवर्धयत् यद्भूमिं व्यवर्तयत्।
चक्राण ओपशं दिवि ॥**

(साम. १२१; अथर्व. २०।२७।५; ऋ. ८।१४।५)

अर्थ- (यज्ञः) ऋत्विज् आदियोंसे किये हवनादि यज्ञ (इन्द्रम्) मेघको अर्थात् वर्षाको (अवर्धयत) बढाता है।

---

१ गृहवे- गृहेर्मृगय्वादित्वात् कुप्रत्ययः, ४ यामाहूतौ=यामागन्तारो देवाः अत्र यातेः, अर्तिस्तुहुसृ इत्यादिना मन् प्रत्ययः। ते आहूयन्तेऽत्रेति यामाहूतिः= यज्ञः तस्मिन्।

(यत्) जब मेघ (दिवि) आकाशमें वर्षाको (ओपशम्) शयन करनेके समीप (चक्राणः) करता हुआ (भूमिम्) पृथिवी वृष्ट्यादिसे और अन्नादिकी समृद्धिसे (व्यवर्तयत्) विशेष करके पुष्ट कर देता है ॥ ५ ॥ (यद्वा)

यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः । अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥

(ऋ. १।७९।३)

अर्थ- (यत्) जब (ईम्) यह पर्जन्य अर्थात् वर्षा करनेवाला मेघ (ऋतस्य) वृष्टिके जलके (पयसा) जलके सारभूत रससे (पियानः) पृथिवीको तृप्त करता हुआ अर्थात् अन्नादिकी उत्पत्तिसे श्यामला करता हुआ और (ऋतस्य) वर्षाके जलके (रजिष्ठैः) अत्यन्त सरल (पथिभिः) मार्गोंसे (नयन्) दूसरे पृथिवीके स्थानोंपर ले जाता हुआ (अर्यमा) सूर्य [' अर्यमा आदित्यो भवति ' निरु. २।१३] (मित्रः) वर्षाके करानेसे जगत्का मित्ररूप हुआ हुआ (वरुणः) सबमें श्रेष्ठ यद्वा सबसे वरनेयोग्य (परिज्मा) और चारों ओर चलानेवाली वायु (उपरस्य= उपलस्य) मेघके (योनौ) वर्षाके जलके उत्पत्तिके स्थानमें (त्वचम्) उस जलको त्वचारूप (पृञ्चन्ति) जोड देता है ।

वैसे उपनिषद्में भी कहा है—

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याः काश्च पृथिवीं श्रिताः । अथो अन्नेनैव जीवन्ति । अथैनदपियन्त्यन्ततः । अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम् ॥ (तैत्तिरीय. २।२)

अर्थ— जितने प्राणी पृथिवीपर वास करते हैं, सबके शरीर अन्नही से उत्पन्न होते हैं । फिर उसी अन्नको सब जीव खाकर जीते हैं । मरनेके पश्चात् भी अन्नहीमें प्रवेश कर जाते हैं अर्थात् पृथिवी, अग्नि या जलके अन्न हो जाते हैं । इसलिये अन्नही सब भूतोंमें श्रेष्ठ है । तथा च मनुरप्याह—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥

(मनु० अ. ३, श्लो. ७६)

अर्थ— जो आहुति विधिपूर्वक स्नेहयुक्त सामग्रियोंसे मिली हुई अग्निमें दी जाती है, वह सूर्यमें जा रहती है । फिर सूर्यसे वृष्टि, उस वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे प्रजाएं पलती हैं ।

तुलना— गीतामें ऋत्विज् यज्ञ करें, उनसे मेघ जल-बर्षते हैं और वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है और अन्नसे जीवों के शरीर पलते हैं, ऐसा कहा है ।

वेदमें भी ऋत्विग्लोगोंसे किये हुए यज्ञसे मेघ होते हैं मेघोंसे वृष्टि होती है , वर्षाका जल पृथिवीको तृप्त करता है , पृथिवीसे अन्न उत्पन्न होता है, अन्नसे शरीर पलते हैं ॥

(१५) कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

(गीता, अ. ३, श्लो. १५)

अर्थ- हे अर्जुन ! कर्म, यज्ञादि विधिका कर्म, तथा ऋत्विज् तथा यजमान कर्म (ब्रह्मोद्भवम्) वेदरूप ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है । (ब्रह्म) वेद (अक्षरसमुद्भवम्) अक्षर ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ हुआ है । (तस्मात्) इसलिये (सर्वगतम्) सर्वव्यापक (नित्यम्) अविनाशी (ब्रह्म) वेद तथा ब्रह्मको (यज्ञे) यज्ञमें (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित जान ॥१५॥

वेदगीता (मंत्रः)

तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुस्तस्मादजायत ॥

(ऋ. १०।९०।८; वा. य. ३१।६; अथर्व. १९।६।१४; तै. आ. ३।१२।४)

अर्थ- (ऋचः, सामानि, छन्दांसि, यजुः) ऋग्वेद, साम-वेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद, तथा उनकी ऋचाओं तथा मंत्रों उत्पन्न होने अग्निष्टोमादि यज्ञोंका कर्म (तस्मात्) उस (सर्वहुतः) परमात्माके आह्वान करनेवाले (यज्ञात्) यज्ञात्मक अक्षर

---

(१) पियानः = स्फायी ओप्यायी वृद्धौ 'बहुलं छन्दसि,' इति शपोलुक् । धातोः व्यत्ययेन पीभावः ।

(२) रजिष्ठैः = ऋजु शब्दात् इष्ठनि ' विभाषर्जोश्छन्दसि ' इति ऋकारस्य रत्वम् । ' टेरिति ' टि लोपः ।

(३) पृञ्चन्ति = पृची संपर्के रौधादिकः ।

ब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं। इसलिये वह सर्वगत ब्रह्म और वेद सर्वव्यापकही है ॥८॥ उपनिषदमें भी कहा है—

यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः॥ (बृहदा. ४।५।११)

अर्थ— जैसे गीली लकडीके साथ अग्निके संयोग होनेसे धूम पृथक् होकर निकलते हैं, इसी प्रकार सबसे महान् परब्रह्मके निःश्वाससे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकट हुए हैं।

तुलना— गीतामें, कर्मकी उत्पत्ति वेदसे, वेदका प्राकट्य सर्वव्यापक अक्षर ब्रह्मसे कहा गया है। वेदमें भी चारों वेदों तथा उनसे यज्ञोंका प्राकट्य सर्वव्यापक अक्षर ब्रह्मसे कहा गया है। और उपनिषदोंसे भी यही बात सिद्ध होती है॥

(१६) एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥
(गीता, अ. ३, श्लो. १६)

अर्थ– हे (पार्थ !) हे पृथा-पुत्र अर्जुन! (इह) इस संसारमें (यः) कर्माधिकारी पुरुष (एवम्) इस प्रकार (प्रवर्तितम्) ईश्वरसे चलाए हुए (चक्रम्) सृष्ट्यादिमें जीवोंकी वेदज्ञानकी प्राप्ति, फिर वेदोंकी आज्ञाऽनुसार यज्ञादि कर्मोंका करना, फिर देवताओंकी तृप्ति, फिर वर्षा, वर्षासे अन्नोत्पत्ति, अन्नद्वारा प्राणियोंकी उत्पत्ति, फिर वैसेही पूर्ववत् वेदोंकी प्राप्ति इस प्रकारके जगत्के निर्वाह-रूप जालको (न) नहीं (अनुवर्तयति) अनुष्ठान करता, (सः) वह पुरुष (अघायुः) अपनी आयुःपर्यन्त पापसे लिप्त हुआ हुआ अर्थात् पापजीवी और (इन्द्रियारामः) इन्द्रियपरायण अर्थात् इन्द्रियों द्वारा विषयसुखके साथ रमण करनेमें प्रवीण (मोघम्) व्यर्थ (जीवति) जीता है। अर्थात् इस प्रकार कीट, पतंग, शूकर, शृगाल इत्यादिके समान जीनेसे उसका मर जाना उत्तम है॥ १६॥

वेदगीता (मंत्रः)

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति। यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ ६॥ (ऋ. १०,७१,६; ऐ. आ. ३,१०; तै. आ. १,३,१; २,१५,१)

अर्थ— (यः) जो कर्माधिकारी पुरुष (सचिविदं) वेदाध्ययन करनेवाले तथा वेदोंद्वारा कर्मकाण्डका ज्ञान रखनेवाले सत्पुरुषको और (सखायम्) सर्वदा नित्य ज्ञानवाले मित्र-रूप वेदको (तित्याज) छोड देता है अर्थात् वेदकी आज्ञाके अनुसार इस संसारमें अपना जीवन-निर्वाह नहीं करता। (तस्य) उस पुरुषकी (वाचि+अपि) लौकिक और वैदिक फल देनेवाला (भागः) कोई प्राप्त होनेयोग्य भाग नहीं है। (ईम्) यह पुरुष इस जगतमें (यत्) जिस बातको (शृणोति) सुनता है (तत्) उस वचनको (अलकम्) व्यर्थही (शृणोति) सुनता है, (हि) जिस कारणसे (सुकृतस्य) पुण्यके अर्थात् शुभ कर्मके (पन्थाम्) मार्गको (न) नहीं (प्र+वेद) श्रद्धारहित होनेसे अच्छी तरहसे पुण्यके अनुष्ठानके मार्गको जानता है, इसलिये उसका किसी सज्जनद्वारा उपदेश सुननाही निष्फल है॥ ६॥

उपनिषद्में भी कहा है—

अथो अयं वा आत्मा सर्वेषां भूतानां लोकः, स यज्जुहोति यद्यजते तेन देवानां लोकोऽथ यदनुब्रूते तेन ऋषीणामथ यत्पितृभ्यो निपृणाति यत्प्रजामिच्छते तेन पितृणामथ यन्मनुष्यान्वासयते यदेभ्योऽशनं ददाति तेन मनुष्याणामथ यत्पशुभ्यस्तृणोदकं विन्दति तेन पशूनां यदस्य गृहेषु श्वापदा वयांस्या-पिपीलिकाभ्य उपजीवन्ति तेन तेषां लोकः॥ (बृहदा. १।४।१६)

अर्थ– यह मानुषी आत्मा सर्व भूतोंका लोक है अर्थात् प्राणीमात्रकी रक्षाका कारण है। मनुष्य जो कुछ हवन करता है और यजन करता है, उससे देवताओंका लोक स्थिर रहता है अर्थात् देवगण तृप्त रहते हैं। जो वेदादि अध्ययन करता है, उससे ऋषियोंका लोक स्थिर रहता है अर्थात् ऋषिगण प्रसन्न रहते हैं। जो पितरोंके लिये तर्पणादि करता है, तथा पुत्र-पौत्रकी इच्छा करता है, उससे पितरोंका लोक स्थिर रहता है अर्थात् पितृगण तृप्त होते हैं। जो अपने घरमें आये हुए मनुष्योंका अर्थात् अतिथिगणका सत्कार करता है और उनको अन्नादि भोजन कराकर उनकी क्षुधा-तृषाकी शान्ति करता है, उससे मनुष्य-लोककी स्थिरता बनी रहती है, अर्थात् मनुष्यगण तृप्त रहते हैं। जो पशुओंके लिये तृण और जल देता है, उससे पशु-

ओंके लोककी स्थिरता होती है अर्थात् पशुगण तृप्त रहते हैं। इसी प्रकार (यदस्य गृहेषु) जो इस मनुष्यके घरमें कुत्ते, काक, चैंटी, आदि इसके अन्नसे अपना अपना भाग पाकर जीवित रहते हैं अर्थात् सब कीट पतंग प्रसन्न रहते हैं । इस श्रुतिके वचनसे निश्चय होता है कि जो मनुष्य होकर इन कर्मोंका सम्पादन नहीं करता है, वह देव, ऋषि, पितर, मनुष्य, पशु और पक्षी सबोंकी हिंसा करनेका अपराधी है। अर्थात् जो हवन, अध्ययन, तर्पण, बलिवैश्वदेव इत्यादि यज्ञोंके वेद-प्रवर्तित चक्रको नहीं करता, वह अघायु है इन्द्रियाराम है, व्यर्थ जीता है ! इस जीनेसे उसका मर जानाही उत्तम है।

तुलना— गीतामें परमात्मासे चलाये हुए नित्य नैमित्तिक यज्ञोंको न करनेवाला पापी, इन्द्रियोंके विषयोंमें वास करनेवाला और व्यर्थ-जीवी है, ऐसा कहा है। वेद और उपनिषद्में भी वैदिक यज्ञोंके न करनेवालेका इस संसारमें कोई भाग नहीं है और नहीं उसकी वाणीमें कोई सत्यता रह सकती है। जो कुछ उपदेश वह इस जगतमें व्यर्थही सुनता है वह सर्वदा पुण्यलोकके मार्गसे दूर रहता है, ऐसा कहा है।

(१७) यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥
(गीता, अ. ३, श्लो.१७)

अर्थ– (यः) जो (मानवः) मनुष्य (तु) तो (आत्मरतिः) आत्मामें प्रीति करनेवाला (आत्मतृप्तः) आत्मामें तृप्त रहता है (च) और (आत्मनि) आत्मानन्दमें (एव) ही (सन्तुष्टः) सन्तोष रखता है (तस्य) ऐसे ज्ञानी पुरुष के (कार्यम्) करनेयोग्य कोई कर्मही (न विद्यते) विद्यमान् नहीं है ॥ १७ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ॥७॥ वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ८ ॥
(ऋ. १।६७।४)

अर्थ– (यः) जो मनुष्य (ईम्) इस आत्माको (गुहा) अपने हृदयाकाशमें (भवन्तम्) रहते हुए को (चिकेत) जानता है अर्थात् मैं सर्वदा आत्माके समीपही हूं मुझे दूर दूर न भटकना चाहिये। इससे आत्मरति सिद्ध होती है। और जो मनुष्य (ऋतस्य) सत्यस्वरूपके (धाराम्) धारण करनेवाले आत्माको (आ + ससाद) अच्छी तरह चारों ओरसे इन्द्रियोंको रोककर प्राप्त होता है अर्थात् सर्वदाही आत्म-तृप्तिमें लगा रहता है और (ये) जो मनुष्य (ऋतानि) आत्मयज्ञोंको (सपन्तः) अपने आपमें जोडते हुए अर्थात् सब आत्माओंको अपने आत्माके साथ समता करते हुए (विचृतन्ति) स्तुति करते हैं। (आत् + इत्) सब आत्माओंको एकता ध्यान करनेके अनन्तरही (अस्मै) इस आत्मरतिवाले तथा आत्मतृप्तिवाले पुरुषको (वसूनि) सबसे उत्तम वास-स्थान अर्थात् मुक्तिको (प्र ववाच) परमात्मा कहता है। वैसे उपनिषद्में भी कहा है—

आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेद५ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥
(छांदोग्य. ७।२५।२)

अर्थ— आत्माही नीचे है, आत्माही ऊपर है, आत्माही पीछे है, आत्माही आगे है, आत्माही दायें है, आत्माही बायें है, यह जो वस्तुतस्तु इस सृष्टिमें हैं सब आत्माही हैं। सो जो विद्वान् इस प्रकार देखता हुआ, मनन करता हुआ, जानता हुआ, आत्माहीमें रति रखनेवाला है, आत्माहीसे क्रीडा करनेवाला है, आत्माहीसे मिलकर सुखी होनेवाला है तथा आत्माही के आनन्दमें रहनेवाला है, वही यथार्थ चक्रवर्ती नरेशवत् हो जाता है। वही प्राणी ब्रह्मलोकसे पाताललोकपर्यन्त जितने लोकलोकान्तर हैं उनमेंसे जिस लोककी इच्छा करे वहां जा सकता है और सब स्थानोंमें विहार कर सकता है। और प्रमाण भी है—

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ (मुण्डक. ३।१।३)

अर्थ— जब विद्वान् ज्योतिःस्वरूप जगत्के कर्ता ईश्वरको अपनी दिव्य चक्षुसे देखता है, तब आत्माको देखनेवाला विद्वान् शुभाशुभ कर्मोंको जडसहित नाश करके परम समताको

प्राप्त होता है अर्थात् फिर उसको किसी कर्मके करनेका प्रयोजनही नहीं रहता । इसलिये समभावको पाकर शान्त पदवी लाभ करके जीवन्मुक्त हो जाता है ॥

तुलना— गीतामें आत्माको आत्मा समझनेवाला, देहको जड समझनेवाला, सब आत्माओंकी अपने आत्मसम समझनेवाला, सबमें समता रखता हुआ मुक्ति पदवीको पाता है ऐसा कहा है। वेदमें भी और उपनिषदोंमें भी अपने चारों ओर आत्माही आत्माको देखनेवाला आत्मानन्दमें मग्न रहनेवाला समताको पाता हुआ मुक्त हो जाता है।

(१८) नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥
(गीता. अ. ३, श्लो. १८)

अर्थ— (तस्य) उस आत्मरत, आत्मतृप्त और आत्मसन्तुष्ट प्राणीके (कृतेन) कुछ किये हुए कर्मसे (अर्थः न) कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् ब्रह्मवेत्ताको किसी कर्म करनेसे कोई तात्पर्य सिद्ध करना शेष नहीं है। (अकृतेन) कुछ न किये हुए कर्मसे (इह) इस संसारमें (कश्चन) कोई प्रत्यवाय भी नहीं है। (अस्य) इस प्राणीका (सर्वभूतेषु) ब्रह्मलोकसे लेकर पातालपर्यन्तके सब भूतोंमें (कश्चित्) कोई (अर्थव्यपाश्रयः) अर्थका आश्रय करना अर्थात् किसी अर्थके सम्बन्धमें किसी क्रियाका साधन करना (च न) भी नहीं है अर्थात् किसी देवतादिसे भी किसी प्रकारका अर्थ निकालनेके लिये वा उनके विघ्नोंसे बचनेके लिये किसी क्रियाके साधनका प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।
(वा. य. ४०।७).

अर्थ- (यस्मिन्) जिस अवस्थाविशेषमें अर्थात् संसारसे वैराग्य उत्पन्न करनेवाली सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधिके समयमें (सर्वाणि) सब (भूतानि) चेतन और अचेतन वस्तु (आत्मा एव अभूत्) आत्माही है, क्योंकि मनको आत्मज्ञानमें रमा रहनेसे आत्मामेंच वस्तुओंको देखता हुआ भी उन्हें नहीं देखती अर्थात् सर्वत्र आत्माको देखता और आत्माकाही अनुभव करता है और कुछ नहीं देखता क्योंकि आत्मज्ञानीको अन्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। (विजानतः) ऐसा जाननेवाले और (एकत्वम्) " आत्मैवेदं सर्वम् " ' सर्वं खल्विदं ब्रह्म ' इस भावसे सर्वत्र ब्रह्मके अद्वैतभावको (अनुपश्यतः) देखनेवाले आत्मज्ञानीको (तत्र) उस दशामें (कः) क्या (मोहः) अब मुझे अमुक वस्तु लेनी चाहिये ऐसा मोह है। (कः शोकः) यह वस्तु मुझे मिलनी चाहिये, नहीं मिल सकी इस बातमें कोई शोक नहीं है ॥७॥

जैसे उपनिषद्में भी कहा है-

नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥
(माण्डू. ६।७)

अर्थ- जिस समय योगी तथा आत्मज्ञानीकी बुद्धि न भीतर की ओर, न बाहरकी ओर हो अर्थात् न स्वप्न हो, न जागृति हो। (न उभयतः प्रज्ञं) कुछ स्वप्न और कुछ जागरित दोनों मिली हुई अवस्था भी न हो। और (प्रज्ञानघनम्) सुषुप्ति अर्थात् घोरनिद्रा भी न हो। (प्रज्ञं) जागरित (अप्रज्ञम्) युगपत् जडके समान बोधरहित भी न हो। (अदृष्टम्) नेत्रोंका विषय न हो और हाथ पांव आदि किसी इंद्रियद्वारा ग्रहण करनेयोग्य भी न हो, व्यवहारके योग्य भी न हो। (अलक्षणम्) अनुमानके भीतर भी न आ सकता हो। चिन्ता करनेयोग्य और उपदेश करनेयोग्य भी न हो । (एकात्मप्रत्ययसारम्) जागरितादि तीनों अवस्थाओंकी एकता हो जानेपर जो आत्मज्ञानका सारभाग परमानन्दस्वरूप है सोही हो फिर प्रपञ्चोपशम हो अर्थात् जिस अवस्थामें प्रपञ्चका नाश हो जाता है तब यह पुरुष (शिवम्) परम कल्याणमय (अद्वैतम्) एकात्मस्वरूप ऐसी अवस्थाको तुर्यावस्था अर्थात् जीवन्मुक्तावस्था मानते हैं, वही शुद्ध निर्मल आत्मा है और (विज्ञेयः) जाननेयोग्य है।

तुलना— गीतामें ' सर्वत्र, सर्वदा सबको एकात्मस्वरूप देखनेवाला शोकमोहादि रहित जीवन्मुक्त होता है ' ऐसा कहा गया।

वेद और उपनिषद्में भी सर्वत्र सबको एकात्मस्वरूप देखनेवालेको जीवन्मुक्त कहा है।

(१९) तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

(गीता, अ. ३, श्लो. १९)

अर्थ-(तस्मात्) इसलिये तू (असक्तः) कर्मोंके फलोंकी कामनासे रहित हुआ हुआ (सततम्) सदा अर्थात् लगातार जीवनभर (कार्यम्) अवश्य करनेयोग्य (कर्म) नित्यनैमित्तिक कर्मोंको (समाचर) शास्त्रोंकी आज्ञाके अनुसार कर (हि) क्योंकि (पुरुषः) ईश्वर चरणानुरागी पुरुष (असक्तः) सब प्रकारके फलोंकी इच्छा छोडकर कर्मको (आचरन्) केवल भगवत्प्राप्ति-निमित्त करता हुआ (परम्) मोक्षको अर्थात् परम पदको (आप्नोति) प्राप्त करता है॥१९॥

वेदगीता (मंत्रः)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

(वा. य. ४०।१४)

अर्थ— (यः) जो आत्मज्ञानी, वेदतत्त्वको जानने-वाला कर्मोंके फलोंकी आकांक्षासे रहित पुरुष (विद्याम्) आत्मज्ञानको (च) और (अविद्याम्) कर्मयोगको कर्म-योगसे अन्तःकरणशुद्धि तथा शरीर-कर्तव्यपालन, और ज्ञानसे भगवत्स्वरूपप्राप्ति (तद्) उन (उभयम्) दोनोंको (सह) इकट्ठा या एक स्वरूपही (वेद) जानता है। वह मुमुक्षु पुरुष (अविद्यया) कर्मयोगसे (मृत्युम्) जन्म-मरणरूप प्रवाहको (तीर्त्वा) पार करके जीवन्मुक्त हुआ हुआ (विद्यया) ब्रह्मज्ञानसे (अमृतम्) मोक्षको (अश्नुते) प्राप्त होता है।

तुलना— गीतामें निष्काम कर्म करनेसेही मनुष्यको मुक्ति मिलती है, ऐसा बताया।

वेदमें भी कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनोंका ज्ञान मुक्तिका कारण बताकर निष्काम कर्मयोगसे मृत्युसे छुटकारा और ज्ञान-से मोक्षकी प्राप्ति बताई है।

(२०) कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि॥

(गीता, अ. ३, श्लो. २०)

अर्थ— (हि) जिस कारण (जनकादयः) जनक, जयबलि, अश्वपति, अजातशत्रु आदि क्षत्रिय राजा (कर्मणा एव) नित्यनैमित्तिक कर्मानुष्ठानसे ही (संसिद्धिम्) सम्यक् तरह ज्ञानात्मक-सिद्धिको अर्थात् मोक्षपदवीको (आस्थिताः) प्राप्त हुए, अर्थात् कर्मही करते करते ज्ञानको प्राप्त हुए इसलिये तू भी कर्मही करनेयोग्य है। (लोकसंग्रहम्) उन्मार्गमें प्रवृत्त लोगोंको उन्मार्गसे निवारण करनेके लिये और संसारी लोगोंको धर्मका ग्रहण करवानेके लिये (संपश्यन् एव) देखते अर्थात् आवश्यक जानते हुए (अपि) भी तू (कर्तुम्) निष्काम कर्म करनेके (अर्हसि) योग्य है॥२०॥

वेदगीता (मंत्रः)

विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः
सन्तो अमृतत्वमानशुः। सौधन्वना ऋभव
सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः॥

(ऋ. १।११०।४; निरुक्त. ११।१६)

अर्थ— (वाघतः) वैदिक यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले कर्मयोगी (सौधन्वनाः) सुधन्वा आंगिरसके पुत्र (सूर-चक्षसः) तेजस्वी, सूर्य-समान प्रकाशवाले, यद्वा सूर्यके समान सबमें प्रसिद्ध (ऋभवः) नित्य नैमित्तिक कर्मोंके करनेसे बडे प्रकाशमान, सत्य बोलने और याज्ञिक कर्मोंके करनेसे भी प्रकाशमान ज्ञानी, राजा सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाजा तीनोंही (मर्तासः सन्त) मरण-धर्मवाले होते हुए (शमी) 'शमीति कर्मनामसु' शान्ति-स्थापन तथा ज्ञान साधनात्मक नित्य नैमित्तिक निष्काम कर्मोंको (तरणित्वेन) सत्वर लगातार (विष्ट्वी) करके (अमृतत्वम्) अमरपन अर्थात् मोक्षको (आनशन्त) प्राप्त होते हैं वेही कर्मयोगी लोग (संवत्सरे) संवत्सरावयवभूत वसन्तादि सामयिक यज्ञोंमें (धीतिभिः) कर्मानुष्ठानोंसे (सम् + अपृच्यन्त) मोक्ष पदवीकी प्राप्तिको पा लेते हैं।

ऋभवो वै देवेषु तपसा सोमपीथं अभ्यजयन्।

(ऐ. ब्रा. ३।१०)

अर्थ- ऋभु, विभ्वा, वाजा आदिने (देवेषु) देवताओंके स्वरूपमें स्थित होकर यद्वा प्रकाशमानात्मक-ज्ञानमें स्थित होकर (तपसा) निष्काम कर्मानुष्ठानसे (सोमपीथम्) अमृतके

पानको अर्थात् मुक्तिको (अभ्यजयन्) पा गए।

यथा यास्क आह—

'सुधन्वनः आंगिरसस्य त्रयः पुत्राः बभूवुः ऋभु-विभ्वा-वाज इति, तेषां प्रथमोत्तमाभ्यां बहुवन्निगमा भवन्ति॥ (निरुक्त. ११।१६)

अर्थ—ऋभु, विभ्वा और वाज यह तीन 'आंगिराके पुत्र सुधन्वा'के पुत्र हुए हैं। उनमें पहलेसे और अन्तिमसे (ऋभु वा वाज शब्दके बहुवचनमें निगम होते हैं। मध्यमके नहीं।

तुलना— गीतामें जहां ज्ञानसे मुक्ति हो सकती, वहां नित्यनैमित्तिक निष्काम कर्म करनेसे भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है, जैसा कि, राजा जनक, राजा अश्वपति आदि निष्कण्टक राज्य करते हुए भी पूर्ण ज्ञानी होकर मुक्तिको प्राप्त हुए थे, ऐसा कहा है।

वेद और ब्राह्मणग्रन्थमें भी 'ऋभु, विभ्वा, वाजा आदि आंगिराके पुत्र सुधन्वाके पुत्र उत्पन्न हुए थे। उन्होंने कर्म-मार्गसेही अर्थात् यज्ञानुष्ठानादि कर्मोंके करनेसे ज्ञान होकर मुक्त हो गए थे, ऐसा बताया गया है।

२१) यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(भग. अ. ३, श्लो. २१)

अर्थ- (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ पुरुष (यत् यत्) जिस जिस कर्मका (आचरति) लौकिक वैदिक आचरण करता है। अर्थात् महात्मा, ज्ञानी, योगी, विद्वान्, माता, पिता, गुरु, राजा आदि संसारमें प्रधान पुरुष कहलानेवाले स्वार्थका परित्याग करके कामनारहित होकर संसारको धर्ममार्गमें चलाना अपना कर्तव्य-कर्म समझते हैं। अपने ऊपर क्लेशोंको सहन करके भी लोगोंको धर्मपर दृढ रखनेके लिये धर्मकी मर्यादाके पालनमें दृढ रहते हैं। (इतरः) दूसरा (जनः) साधारण पुरुष भी (तत् तत्) उसी उसी प्रकार उस उस कामको (एव) अवश्य आचरण करता है, क्योंकि (सः) वह श्रेष्ठ पुरुष (यत्) जिस बातको (प्रमाणम्) श्रुतिस्मृतिके अनुसार जिस प्रमाणको (कुरुते) मानता है अर्थात् जिस मर्यादाका निरूपण करता है (लोकः) संसारी पुरुष भी (तत्) उस प्रमाणको (अनुवर्तते) प्रमाणभूत समझकर उसके अनुसार चलता है॥२१॥

वेदगीता (मंत्रः)

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु॥
(ऋ. ८।१००।११, तै. ब्रा. २।४।६।१०; निरु. ११।२९)

अर्थ- =(देवाः) विद्वान्, ज्ञानी, योगी, महात्मा लोग (देवीम्) जिस श्रुतिस्मृतिके प्रमाणोंसे प्रकाशमान (वाचम्) वेदशास्त्रोक्तवचनको (अजनयन्त) उत्पन्न करते हैं अर्थात् बोलते हैं। (विश्वरूपाः) नानारूपोंको धारण करनेवाले (पशवः) पशुवत् मूढ पुरुष (वदन्ति) विद्वानोंसे प्रमाणित की हुई उसी वाणीको बोलते हैं और आचरण करते हैं अर्थात् उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरण और वचनोंको प्रमाण मानते हैं। (सा) श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण की हुई बात (मन्द्रा) आनन्दित करनेवाली (नो) हमारे (इषम्) अन्नादि भक्ष्यपदार्थोंको (दुहाना) दोहकर देती हुई (धेनुः) कामधेनुकी तरह स्वच्छ पदार्थोंको धारण करनेवाली (सु+स्तुता) अच्छी तरह सेवित की हुई (अस्मान्) हम मूर्ख लोगोंको (उप+एतु) प्राप्त हो।

यास्कने भी कहा है—

देवीं वाचमजनन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति। व्यक्तवाचश्चाव्यक्तवाचश्च। सा नो मदना अन्नं च रसं च दुहाना धेनुर्वाक् अस्मानुपैतु सुष्टुतेति॥ (निरुक्त. ११।२९)

तुलना- गीतामें जिस कामको महात्मा, ज्ञानी, योगी आदि पुरुष करते हैं उन्हींने किये कार्मों तथा आचरणोंको देखकर दूसरे लोग भी वही काम करते हैं यह बताया है। वेदमें भी जिस वचनको यद्वा जिस आचरणको विद्वान् लोग करते हैं उन्ही कामोंका आचरण दूसरे पशुवत् मूढ पुरुष भी करते हैं इसलिये श्रेष्ठ बननेके लिये उसी श्रेष्ठ पुरुषोंसे आचरण की हुई वाणीकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना की गई है।

(२२) न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
(गीता, अ. ३, श्लो. २२)

अर्थ— (पार्थ !) हे पृथाके पुत्र अर्जुन ! (मे) मेरे लिये (त्रिषु) तीनों (लोकेषु) लोकोंमें (किंचन) कुछ भी

(कर्तव्यम्) करनेयोग्य कर्म (न+अस्ति) नहीं है। और किसी (अनवाप्तम्) नहीं प्राप्त हुई वस्तुको (अवाप्तम्) प्राप्त करना भी (न) नहीं है। तो भी मैं (च) भी (कर्मणि) कर्ममें (वर्ते एव) निश्चय करके वर्तमान रहता हूं अर्थात् मैं भी वेदविहित कर्मोंका सम्पादन किया करता हूं ॥२२॥

वेदगीता (मंत्रः)

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः। कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥

(ऋ. ६।९।२)

अर्थ— (अहम्) मैं पूर्ण काम, परमेश्वर (तन्तुम्) अपने लिये कर्म तंतुओंको, (ओतुम्) विस्तृत करने (न वि जानामि)को जरूरी (न) नहीं समझता हूं। (समरे) कर्म-फलके संगमें अर्थात् देवयजनात्मक-यज्ञोंमें (अतमानाः) लगातार चेष्टा करनेवाले ऋत्विज, अपने लिये कर्म करते हुए संसारी जीव (यम्) संसारमें बन्धन करनेवाले जिस सकाम कर्मको (वयन्ति) बुनते हैं (इह) इस संसारमें (परः) संसार बन्धनसे दूर रहनेवाला श्रेष्ठ पुरुष लोगोंको कर्म करनेमें प्रवृत्त करनेके लिये लगा हुआ (वक्त्वानि) दूसरोंको कहनेयोग्य वचनोंको (अवरेण) अर्वाचीन (पित्रा) उपदेशादिसे पालना करनेवालेसे शिक्षा पाया हुआ (पुत्रः) सब सांसारिक बन्धनोंसे बचानेवाला (कस्य) किसको (वदाति) क्या उपदेश देवे।

तुलना– गीतामें अर्जुनको भगवान्ने उपदेश दिया है कि जीवन्मुक्त पुरुषको, जगत्की रक्षाके लिये आये मुझे कोई शेष कर्तव्य नहीं है क्योंकि मैं पूर्णकाम हूं; मुझे कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करनेयोग्य नहीं है। वेदमें भी भगवान्ने यही उपदेश दिया है कि मैं पूर्णकाम हुआ अपने लिये किसी कर्म-तंतुको विस्तृत नहीं करता। श्रेष्ठ पुरुषके लिये जगत्की रक्षा करनेके लिये दूसरे पामर पुरुषोंके लिये कर्मका उपदेश देना तथा कर दिखाना परमावश्यक है॥

(२३) यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता, अ. ३, श्लो. २३)

अर्थ- (पार्थ!) हे पृथापुत्र अर्जुन! (यदि) अगर (अहम्) मैं (हि) निश्चयसे (जातु) कभी (अतन्द्रितः) आलस्यरहित होकर (कर्मणि) वेद-विहित नित्यनैमित्तिक कर्मोंमें (न वर्तेयम्) प्रवृत्त न होऊं अर्थात् यदि आलसियोंके समान मैं भी सब काम छोड चुप बैठ जाऊं, किसी प्रकार भी वेदविहित कर्मोंका आचरण न करूं तो महा अनर्थ होगा। तब (मनुष्याः) संसारके सब मनुष्य (सर्वशः) सब प्रकारसे (मम) मेरे (वर्त्म) मार्गको अर्थात् मेरे आचरणको (अनुवर्तन्ते) अंगीकार कर तदनुसारही चलेंगे अर्थात कर्मोंको छोडकर सब आलसी हो जावेंगे ॥२३॥

वेदगीता (मंत्रः)

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा। यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥

(ऋ. ५।८१।३, वा. य. ११।६, तै. सं. ४।१।१।२).

अर्थ- (अन्ये इत्) दूसरे साधारण जीवही और (देवाः) विद्वान् ज्ञानी लोग भी (यस्य) जिस (देवस्य) कर्मानुष्ठानसे प्रकाशमान् विद्वान् ज्ञानी पुरुषके (प्रयाणम्) मार्ग तथा उस मार्गके आचरणको (अनु+ययुः) अनुसरण करते हैं। (देवाः) ज्ञानी पुरुष, अर्थात् यति लोग (देवस्य) ज्ञानसे प्रकाशमान् श्रेष्ठ विद्वान् के (महिमानम्) महत्त्वको (ओजसा) अपने बलसे (अनु+ययुः) उसकी अनुसरणताको प्राप्त होते हैं। (यः) जो पूर्णकाम (सविता) सर्व जगदुत्पादक परमात्मा (पार्थिवानि) पृथिव्यादि (रजांसि) लोगोंको (महित्वना) अपने महत्त्वसे (वि+ममे) परिछिन्न कर देता यद्वा निर्मित करता है। (सः) वह परमात्मदेव (एतशः) इस स्थावर जंगमात्मक जगत्में प्राण-भावसे शयन करता है। (एतशः एतस्मिन्) स्थावरजंगमात्मके जगति प्राण भावेन शेते इति एतशः।

तुलना– गीतामें आलस्यका परित्याग, तथा नित्यनैमित्तिक कर्तव्य-कर्मोंका करना आवश्यक बताया है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणको देखकर दूसरे पुरुष उसका आचरण करते हैं।

वेदमें भी विद्वान् पुरुष कर्मोंका अनुसरण दूसरे साधारण पुरुष भी करते हैं, यह बताया है।

(२४) उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥

(गीता, अ. ३, श्लो. २४)

अर्थ- हे अर्जुन! (चेत्) यदि (अहम्) मैं (कर्म) वेदविहित कर्तव्यकर्मको (न कुर्याम्) न करूं तो (इमे) यह सब (लोकाः) प्राणी अथवा भूर्भुव आदि सातों लोक (उत्सीदेयुः) नाशको प्राप्त हो जावेंगे। (च) और (अहम्) मैं ही (संकरस्य) वर्णसंकरोंका (कर्ता) उत्पन्न करनेवाला (स्याम्) हो जाऊं और ऐसे वर्णसंकरोंका वृद्धिकारण होकर (इमाः) इस (प्रजाः) सम्पूर्ण सृष्टिकी प्रजाओंको (उपहन्याम्) मानो मैंही हनन करनेवाले हो जाऊंगा ॥२४॥

वेदगीता (मंत्रः)

-भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षा-
मुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं
तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥

(अथर्व. १९।४१।१)

अर्थ- (भद्रम्) संसारी जीवोंके कल्याणका (इच्छन्तः) कामना करते हुए (स्वर्विदः) स्वर्गकी प्राप्तिके साधन, तथा मुक्तिके सुखकी प्राप्तिके साधन, कर्मोंको जाननेवाले (अग्रे) सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुए हुए प्राचीन (ऋषयः) तत्त्वज्ञानी श्रेष्ठ पुरुषोंने (तपः) तपात्मक नित्यनैमित्तिक वैदिक कर्मको (दीक्षाम्) सन्मार्गमें प्रवृत्ति करानेवाले गुरुके उपदेशको (उप+निषेदुः) प्राप्त किया अर्थात् अनुष्ठान किया। (ततः) श्रेष्ठ पुरुषों और ऋषियोंके दिखाए हुए वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानकी सामर्थ्यसे (राष्ट्रम्) राज्य (च) और (ओजः) कर्म करानेवाला वेग और (बलम्) बल (जातम्) उत्पन्न हो जाता है। (देवाः) लोगोंको काममें प्रवृत्त करानेके लिये कर्म करनेवाले विद्वान् पुरुष (अस्मै) इस साधारण पुरुषको (उप+संनमन्तु) अच्छी तरह अपनी ओर झुकावें अर्थात् कर्म करानेमें जोड देवें ॥१॥

तुलना- गीतामें भगवान्ने उपदेश दिया कि यदि महात्मा ज्ञानी पुरुष कर्म न करें तो कर्म लुप्त हो जावेंगे। कर्मोंके लुप्त होनेसे वर्णसंकरता हो जाएगी, वर्णसंकरतासे जगत्का नाश होगा। वेदमें भी सृष्टिके आदिसे कर्ममें प्रवृत्तिका उपदेश दिया। प्राचीन ऋषियोंके दृष्टान्तद्वारा बल, और राज्यकी रक्षा सिद्ध की है। अन्यथा विनाशही विनाश होगा

(२५) सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

(गीता, अ. ३, श्लो. २५)

अर्थ- (भारत!) हे भरत-कुलोत्पन्न अर्जुन! (अविद्वांसः) मूर्ख, आत्मज्ञानसे शून्य पुरुष (तथा) जैसे (कर्मणि) कर्मके फलमें (सक्ताः) फंसे हुए अर्थात् कर्मजन्यस्वर्गादि प्राप्तिरूप फलोंमें आसक्त हुए हुए (कुर्वन्ति) कर्म करते हैं। (तथा) वैसे (लोकसंग्रहम्) लोकसंग्रह अर्थात् लोगोंको अपने धर्ममें प्रवृत्त करनेकी (चिकीर्षुः) इच्छा करता हुआ (विद्वान्) आत्मज्ञानी पुरुष (असक्तः) कर्माभिमानरहित और कर्मोंके फलोंकी आसक्तिसे रहित हुआ हुआ (कुर्यात्) कर्मोंको करे ॥२५॥

वेदगीता (मंत्रः)

आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो
अमृतत्वाय गातुम्। मह्ना महद्भिः पृथिवी
वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥

(ऋ. १।७२।९; तै. आ. २,५,८,१०)

अर्थ- (ये) जो आत्मज्ञानसे शून्य मूर्ख पुरुष (अमृतत्वाय) यज्ञादिसे उत्पन्न हुए हुए कर्मोंके फलरूप स्वर्गादि सुखकी प्राप्तिके कारण अमृतकी प्राप्तिके (गातुम्) उपायकी प्राप्तिको (कृण्वानासः)* करते हुए (विश्वा) सब (सु+अपत्यानि) अच्छी तरहसे कर्मोंसे न भ्रष्ट करनेवाले ज्योतिष्टोमादि कर्मोंको (आ+तस्थुः) चारों ओर आसक्तिसे करते हैं। (पुत्रैः) अधिकतासे जगत्की रक्षा करनेवाले (महद्भिः) विद्वान् महात्मा पुरुषोंके साथ (अदितिः) न खण्डन करनेयोग्य अर्थात् न नाश करनेयोग्य (माता) पृथिवी माता [और उसपर रहनेवाले जीव] (मह्ना) × लोकसंग्रहके लिये कर्म करनेके महत्वसे

---

* कृण्वानासः = कृवि हिंसाकरणयोश्च, व्यत्ययेनात्मनेपदम् "धिन्विकृण्व्योरच्चेत्युप्रत्ययः। तत्संनियोगेन आकारान्तादेशश्च। तस्य 'आतो लोपे' इति स्थानिवद्भावाद्गुणाभावः। शानचश्चित्वादन्तोदातत्वम्। 'आज्जसेरसुक्' इत्यसुक् प्रत्ययः।

× मह्ना= महिम्नेत्यस्य वर्णलोपश्छान्दसः।

(धायसे) × सारे जगत्के धारण करनेके लिये (वि+तस्थे) विशेषतासे स्थित रहती है। हे जीवात्मन् (वे:)§ तू कर्मोंके फलोंको खाता है ॥९॥

तुलना— गीतामें मूर्खोंकी कर्ममें प्रवृत्ति लालचसे बताई और ज्ञानीकी कर्ममें प्रवृत्ति लोगोंकी कर्ममें प्रवृत्तिके लिये फलासक्तिकी शून्यतासे बताई है।

वेदमें भी मूर्ख पुरुष स्वर्गादि विनश्वर लोकोंकी प्राप्तिके लिये कर्मोंका करता बताया है। और यह पृथिवी माता निष्काम कर्म करनेवाले महात्माओंसे स्थिर हुई नहीं तो इसकी मर्यादा लुप्त हो जाती।

(२६) न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्॥

(भगव. अ. ३, श्लो. २६)

अर्थ— (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष (कर्मसंगिनाम्) कर्ममें आसक्त रहनेवाले (अज्ञानाम्) अज्ञानियोंके (बुद्धिभेदम्) बुद्धिके भेदका रहस्य (न जनयेत्) कभी न प्रकट करे। अर्थात् यदि ऐसे मूर्ख लोगोंको कर्मतत्त्व बतला दिया जावेगा, अथवा उनकी बुद्धिका चालन कर दिया जावेगा तो बडा अनर्थ होगा, क्योंकि वे ज्ञानयोगमें प्रवृत्ति कर नहीं सकते, और कर्म करनेसे विचलित कर दिये गये तो वे बेचारे दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जावेंगे। (विद्वान्) शास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला बुद्धिमान् पुरुष (युक्तः) समाहित चित्त हुआ हुआ (सर्वकर्माणि) सब प्रकारके नित्य नैमित्तिक कर्मोंको (समाचरन्) अच्छी तरहसे करता हुआ (जोषयेत) प्रीतिपूर्वक कर्मोंका सेवन करावे ॥ २६ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्। रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥

(ऋ. १।७२।५)

अर्थ—(संजानानाः) सकाम और निष्काम कर्म और उनके फलको अच्छी तरह जानते हुए साधक (उप+सीदन्) समाहित मन होकर कर्मोंको करनेके लिये प्राप्त होते हैं। (पत्नीवन्तः) सपत्नीक कर्मयोगी पुरुष (नमस्यम्) नमस्कार करनेयोग्य गार्हपत्यादि अग्नियोंको (अभिज्ञु) चारों ओर झुककर जैसे हो वैसेही (नमस्यन्) पूजते हैं अर्थात् नमस्कार करते हैं। (सखा) कर्ममें आसक्त रहनेवालोंके मित्र (सख्युः) सकाम कर्म करनेवाले मूर्ख मित्रकी (निमिषि) दृष्टिमें (तन्वः) कर्मफलवासनारहित होनेपर भी उस कर्मसंगीके लिये अपने शरीरोंको (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए और अनाहार व्रतोंसे अथवा दीक्षानियमसे (रिरिक्वांसः) रिक्त करते हुए अर्थात् कृश करते हुए (कृण्वत) यज्ञयागादि कर्मोंको करते रहते हैं ॥ ५ ॥

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ॥

(अथ. ३।२४।५)

अर्थ- (शतहस्त !) हे कर्म करनेके लिए सैंकडों हाथ रखनेवाले मनुष्य! (समाहर) नित्यनैमित्तिक कर्मोंको कर। हे (सहस्रहस्त !) कर्म करनेके लिए हजारों हाथ रखनेवाले मनुष्य! (संकिर) तू अच्छी तरह अपने नैमित्तिक कर्मको फैला। (च) और (इह) इस संसारमें (कृतस्य) अपने किये हुए (कार्यस्य) कामकी (स्फातिम्) वृद्धि (समावह) कर ॥ ५ ॥

तुलना- गीतामें कहा है कर्म करनेवाले पुरुषको कर्म करनेसे न फिसलावे, क्योंकि ज्ञानयोगमें अनधिकारी होनेसे और कर्मके परित्याग करनेसे वह दोनों ओरसे भ्रष्ट हो जाएगा। इसलिए विद्वान् पुरुष सर्वदा समाहित चित्त होकर निष्काम-कर्म करता रहे। वेदमें पूर्णतया कर्म करनेकी शिक्षा दी है। शरीरको व्रतादिसे कृश करता हुआ भी नित्यनैमित्तिक कर्मोंको करता रहे। " सौ हाथोंवाले होकर कर्म करो और हजारों हाथोंसे दान दो, अपने कर्तव्यकर्मकी उन्नति करते रहो " ऐसा कहा है।

× धायसे = ' वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि ' इति दधातेर्भावेऽसुन्। ' णित् ' इत्यनुवृत्तेरातो युक् ' चिण्कृतोः ' इति युक्।

§ वेः = वी = गतिप्रजनकान्त्यसनखादनेषु। लङि सिपि अदादित्वात् शपो लुक्। ' बहुलं छन्दस्यमाङ्योगेऽपी- ऽडभावः ॥

(१७) प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥
(गीता, अ. ३, श्लो. २७)

अर्थ- (प्रकृतेः) प्रकृतिके (गुणैः) सात्विक, राजस, तामस, इन तीन गुणोंसे अर्थात् मायाके विकारोंसे (सर्वशः) सब प्रकारके (कर्माणि) लौकिक वैदिक कर्म (क्रियमाणानि) अपने आप सम्पादित होते रहते हैं। परन्तु (अहंकारविमूढात्मा) अहंकारसे मलिन अन्तःकरणवाला (अहम्) मैं ही सब कर्मोंका (कर्ता) करनेवाला हूं (इति) ऐसा (मन्यते) मानता है ॥ २७ ॥

वेदगीता (मंत्रः)

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥ (ऋ. १०।१२५।४; अथर्व. ४।३०।४)

अर्थ— (यः) जो जीव (अन्नम्) अन्नादि भोजनको (अत्ति) खाता है। (सः) वह जीव (मया) भोक्तृशक्तिरूप पञ्चमहाभूत मुझ प्रकृतिद्वारा अन्नको (अत्ति) खाता है। (यः) जो जीव (विपश्यति) चक्षुःद्वारा देखता है (यः च) और जो जीव (प्राणिति) श्वास उच्छ्वास आदि व्यापार करता है (यः) जो (ईम्) ऐसे (उक्तम्) दूसरोंसे कही हुई बातको (शृणोति) सुनता है। वह जीव दृष्ट्यादि शक्तिरूप मुझ प्रकृतिसे और गुणोंसे देखने आदि कर्मको करता है। न कि जीवात्मा इन व्यापारोंको करता है। जो जीव अन्तर्यामी रूपसे स्थिर (माम्) मुझ आत्माको (अमन्तवः) न मानते हुए (उपक्षियन्ति) नाश हो जाते हैं। (श्रुत !) ऐ मुझसे कहे उपदेशको सुननेवाले जीवात्मन् ! (श्रुधि) मुझसे कहे हुए कर्तृत्वभोक्तृत्वादि विचारों को अच्छी तरह सुन (श्रद्धिवम्) श्रद्धासे मिले हुए या श्रद्धापूर्वक यत्नोंसे पानेयोग्य कर्तृत्वभोक्तृत्वविवेचनात्मक वस्तुतत्वको (ते) तुझे (वदामि) उपदेश देता हूं ॥४॥

तुलना- गीतामें है, प्रकृतिके गुण शरीरमें अपने आप देखने आदि कर्मोंको करते रहते हैं। परन्तु प्रकृतिके गुणोंसे किये हुए कर्मोंको मूर्ख अपना किया हुआ समझता है।

वेदमें भी देखना, सुनना, श्वासोच्छ्वास लेने आदिको प्रकृतिसे किया हुआ माना है, जो ऐसा नहीं मानते वह नाश हो जाते हैं ऐसा कहा है।

(१८) तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्म विभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥
(गीता, अ. ३, श्लो. २८)

अर्थ— (महाबाहो !) हे विशाल भुजावाले वीर अर्जुन ! (गुणकर्मविभागयोः) गुण और कर्मोंके विभागोंके (तत्त्ववित्) यथार्थ स्वरूपको जाननेवाला पुरुष (तु) तो (इति) ऐसा (मत्वा) जानकर, कि (गुणाः) तीनों गुण और उनके कार्य इन्द्रियादि (गुणेषु) अपने अपने विषयमें (वर्तन्ते) वर्तमान रहते हैं ऐसा मानकर (न+सज्जते) किसी प्रकारके कर्तृत्वाभिमानमें नहीं फंसता ॥२८॥

वेदगीता (मंत्रः)

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ॥५॥ यस्तुभ्यं दाशाद् यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व ॥६॥ (ऋ. १।६८।३)

अर्थ— (विश्वे) सब चक्षुर्वागादि इन्द्रिय (विश्वायुः) सारी आयुपर्यन्त (अपांसि) दर्शन, वचन, लेना, देनादि कर्मोंको (चक्रुः) करते हैं। (ऋतस्य) अविनाशी, सत्यस्वरूप आत्माकी (प्रेषाः) भेजी हुई दूतीरूप प्रकृतिके गुण हैं जिनसे यह इन्द्रियाँ अपने अपने व्यापार करती हैं। (ऋतस्य) आत्माकी (धीतिः) स्थापित की हुई प्रकृति है। (यः) अनात्मज्ञ मूढ पुरुष (तुभ्यम्) तुझ जीवात्माको (दाशात्) दर्शनवागादि व्यापारोंको देवे। (यः वा) या जो मूढ पुरुष (ते) तुझपर कर्म करनेके दोषको (शिक्षात्) शिक्षित करे (तस्मै) दोनों प्रकारसें दूषित किए हुए उस जीवको (चिकित्वान्) उससे किये हुए ज्ञान और कर्मानुष्ठानको जानता हुआ तू (रयिम्) अनासक्तिरूप ज्ञानको (दयस्व) दे।

तुलना— गीतामें गुण और कर्मोंके विभागको जानकर गुण गुणोंमें प्रवृत्त होते, ज्ञानी पुरुष इस तत्त्वको जानकर प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त नहीं होता, ऐसा कहा है।

वेदमें भी परमात्माकी भेजी हुई प्रकृति और उसके गुण समग्र संसारमें समग्र समयतक प्रवृत्त होते रहते हैं, इस

आत्माका उन गुणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत उलटी शिक्षा देनेवालेको सीधी शिक्षाका उपदेश कर, ऐसेही परमात्माने प्रार्थना की गई है ।।७।।

(२९)प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥
(गीता, अ. ३, श्लो. २९)

अर्थ- (प्रकृतेः) प्रकृतिके (गुणसंमूढाः) गुणोंसे अर्थात् सात्त्विक, राजस और तामसगुणोंसे उत्पन्न देहेन्द्रियादिके विकारोंसे मोहित-चित्तवाले मूढ अविवेकी पुरुष (गुणकर्मसु) देह, इन्द्रिय तथा अन्तःकरणके कर्मोंमें (सज्जन्ते) लगे रहते हैं अर्थात् उन कर्मोंमें आत्मबुद्धिही करते हैं और ऐसा समझते हैं, कि मैं सब कुछ कर रहा हूं। इसलिये (कृत्स्नवित्) पूर्ण तत्त्वज्ञानी (तान्) उन (अकृत्स्नविदः) केवल कर्मफलमात्र में आसक्त रहनेवाले अज्ञानी (मन्दान्) मन्दमति पुरुषोंको (न विचालयेत्)कर्मनिष्ठासे चलायमान न करे ॥२९॥

संजानाना उप सीदन्नभि— (ऋ. १।७२।५)

इस मंत्रकी व्याख्या भगवद्गीता अध्याय ३, श्लो. २६ के नीचे देखें।

(३०) मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥
(गीता, अ. ३, श्लो. ३०)

अर्थ—(मयि) मुझ परमात्मा श्रीकृष्णमें (अध्यात्मचेतसा) विवेककी बुद्धिसे (सर्वाणि) सब (कर्माणि) लौकिक और वैदिक कर्मोंको (संन्यस्य) 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' 'सर्वं ब्रह्मैव' इस बुद्धिसे अर्पण करके (निराशीः) फलकी आशासे रहित हुआ हुआ (निर्ममः भूत्वा) पुत्र, पौत्र, पितामह इत्यादिकी ममतासे रहित होकर (विगतज्वरः) यह भीष्मप्रभृति गुरु आदि मुझसे मारे जायंगे इस शोकसे रहित हुआ हुआ (युध्यस्व) युद्ध कर ॥३०॥

वेदगीता (मंत्रः)

प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतो गातुं धत्त यजमानाय देवाः । उपाकृतं शशमानं यदस्थात् प्रियं देवानामप्येतु पाथः ॥
(अथर्व. २।३४।२)

अर्थ— (देवाः) हे ज्ञानी पुरुषो! (भुवनस्य) उत्पन्न देहके और विश्वमात्रके (रेतः) मूल बीजरूप या उसके फलको अथवा बीजरूप मूल प्रकृतिको (प्रमुञ्चन्तः) मुझमें अर्पण बुद्धिसे छोडते हुए (यजमानाय) अग्निष्टोमादि यज्ञ करनेवाले पुरुषको (गातुम्) ज्ञानके मार्गको (धत्त) धारण करो अर्थात् उन्हें ज्ञानमार्गका आश्रय दो। (यत्) जब वह कर्मयोगी पुरुष (देवानाम्) इन्द्रियोंके (प्रियं) प्यारे (पाथः) मार्गको (अस्थात्) दृढ रूपसे स्थिर हो जावे तब वहही पुरुष (उपाकृतम्) अपने सम्मुख यथावसर साधनोंसे संस्कृत हुए हुए (शशमानम्) अस्त्रशस्त्रादिसे कामना किये हुए (पाथः) सांसारिक युद्धमार्गको (एतु) प्राप्त होवे अर्थात् निश्चिन्त होकर सांसारिक युद्ध करे ॥२॥

तुलना— गीतामें, आध्यात्मिक बुद्धिसे भगवदर्पण कर्म करता रहे जिससे वह निरभिमानी होकर संसारयात्राका निर्वाह कर सकता है, ऐसा कहा है। वेदमें भी प्राकृतिक कर्मोंको भगवदर्पण करके सांसारिक संग्राममें प्रवृत्त हो जाओ, ऐसा उपदेश दिया है।

(३१) ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥
(गीता, अ. ३, श्लो. ३१)

अर्थ— (ये) जो (मानवाः) मनुष्य (श्रद्धावन्तः) इन वचनोंमें श्रद्धा करते हुए (अनसूयन्तः) और इनमें किसी प्रकार दोष न निकालते हुए (मे) मेरे (इदम्) इस (मतम्) मतको (नित्यम्) सदा (अनुतिष्ठन्ति) अनुष्ठान करते हैं (ते अपि) वे भी (कर्मभिः) कर्मोंके बन्धनसे (मुच्यन्ते) छूट जाते हैं ॥३१॥

वेदगीता (मंत्रः)

१ २ ३ २ ३ १ ३२ ३ १ २ ३ १ २
यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
२ ३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ १ २
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥
(साम. १२९८; ऋ. ९।६७।३१)

अर्थ- (यः) जो मनुष्य (पावमानीः) पवित्र करनेवाले (ऋषिभिः) ब्रह्मज्ञानी यतियोंसे (संभृतम्) पालना किए हुये या सम्पादित किये हुए (रसम्) उपदेशके रसको (अध्येति) नित्य पढता है अथवा अनुष्ठान करता है। (सः) वह मनुष्य (सर्वम्) सब प्रकारसे (मातरिश्वना) आकाशवत्सर्वत्र व्याप्त-

Regd. No. B. 1463

संपूर्ण महाभारत ।

अब संपूर्ण १८ पर्व महाभारत छप चुका है। इस सजिल्द संपूर्ण महाभारतका मूल्य ६५) रु. रखा गया है। तथापि यदि आप पेशगी म० आ० द्वारा संपूर्ण मूल्य भेजेंगे, तो यह ११००० पृष्ठोंका संपूर्ण, सजिल्द, सचित्र ग्रन्थ आपको रेलपार्सल द्वारा भेजेंगे, जिससे आपको सब पुस्तक सुरक्षित पहुंचेंगे। आर्डर भेजते समय अपने रेल्वेस्टेशनका नाम लिखें। महाभारतके वन, विराट, उद्योग, भीष्म शान्ति ये पर्व समाप्त है।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

इस 'पुरुषार्थबोधिनी' भाषा-टीकामें यह बात दर्शायी गयी है कि वेद, उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थोंकेही सिद्धान्त गीतामें नये ढंगसे किस प्रकार कहे हैं। अतः इस प्राचीन परंपराको बताना इस 'पुरुषार्थ-बोधिनी' टीका का मुख्य उद्देश है, अथवा यही इसकी विशेषता है।

गीता के १८ अध्याय तीन विभागोंमें विभाजित किये हैं और उनकी एकही जिल्द बनाई है। मू० १०) रु० डाक व्यय १॥)

भगवद्गीता-समन्वय ।

यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करनेवालोंके लिये अत्यंत आवश्यक है। 'वैदिक धर्म' के आकार के १३५ पृष्ठ, चिकना कागज सजिल्द का मू० २) रु०, डा० व्य० ।=)

भगवद्गीता-श्लोकार्धसूची ।

इसमें श्रीमद् गीताके श्लोकार्धोंकी अकारादिक्रमसे आद्याक्षरसूची है और उसी क्रमसे अन्त्याक्षरसूची भी है। मूल्य केवल ॥=), डा० व्य० =)

आसन ।

'योग की आरोग्यवर्धक व्यायाम-पद्धति'

अनेक वर्षोंके अनुभवसे यह बात निश्चित हो चुकी है कि शरीरस्वास्थ्यके लिये आसनोंका आरोग्यवर्धक व्यायामही अत्यंत सुगम और निश्चित उपाय है। अशक्त मनुष्यभी इससे अपना स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस पद्धतिका सम्पूर्ण स्पष्टीकरण इस पुस्तकमें है। मूल्य केवल २॥) दो रु० और डा० व्य० ।=) सात आना है। म० आ० से २॥=) रु० भेज दें।

आसनोंका चित्रपट- २०"x२७" इंच मू० ।) रु०, डा व्य. -)

मंत्री-स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

मुद्रक और प्रकाशक- श्री० दा० सातवळेकर, भारतमुद्रणालय, औंध